जिसने बदली दिशा जगत् की,
धरती और आकाश की ।
जय बोलो ऋषि दयानन्द की,
जय सत्यार्थ प्रकाश की ।।

।। ओ३म् ।।

वर्ष -५६ अंक - ९
मूल्य : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक :१००) रु०
आजीवन -१०००) रु०
प्रतिमास ता० १३ को प्रकाशित

आर्य-संसार

भाद्रपद-आश्विन : सम्वत् २०७१ वि० सितम्बर, २०१४

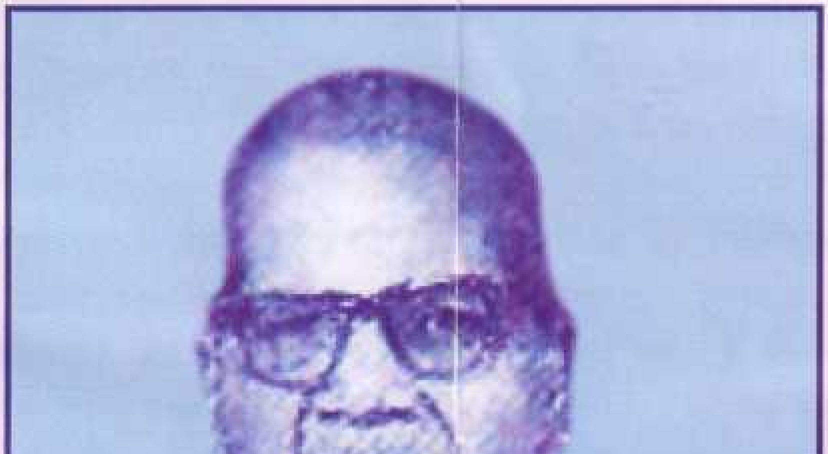

पं० रामावतार शर्मा

पं० रामावतार शर्मा षट्तीर्थ

पं० रामावतार शर्मा का जन्म बिहार प्रान्त के सारन जिला मशरक थाना में करतारपुर नामक ग्राम के पास हुआ था। पैत्रिक परम्परा में सरयूपारीण तिवारी ब्राह्मणों का कुल है। स्वाभाविक रूप से इस पैतृक परम्परा का इनके वैदुष्यपूर्ण जीवन पर, इनकी अति सरलता सात्विकता पर प्रभाव रहा है। आज से ८०-८५ वर्ष पूर्व ब्राह्मण पुत्र संस्कृत के अतिरिक्त और कुछ पढ़ने की कम ही सोच सकता था। इन्होंने भी अपने शैशव में हरपुरजान वेद विद्यालय में प्रारम्भिक शिक्षा आरम्भ की। यही विद्यालय पीछे चलकर गुरुकुल महाविद्यालय हरपुरजान के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शर्माजी जब इस वेद विद्यालय में पढ़ते थे उसी समय इनका परिचय श्री बाबू कृष्णबहादुर सिंह से हुआ। बाबू साहब इसी हरपुरजान ग्राम के क्षत्रिय जमीदार और गुरुकुल के छात्र एवं आर्यसमाजी थे। बाबू साहब ने शर्माजी की योग्यता एवं इनके ब्राह्मण सुलभ संस्कारों को देखकर इन्हें पूर्ण विद्वान् बनाने में भरपूर सहयोग किया।

पं० रामावतार शर्मा ने कई स्थलों पर अध्ययन किया। चम्पारन में मोतिहारी, गुरुकुल वृन्दावन, गुरुकुल कांगड़ी, काशी आदि स्थानों में इन्होंने विद्याध्ययन किया। कलकत्ता में रहकर पंडितजी ने षट्तीर्थ-काव्य, मीमांसा, पुराण, ऋग्वेद शुक्ल यजुर्वेद एवं सामवेद में यह उपाधि परीक्षा उत्तीर्ण की। काशी में श्री चिन्नस्वामीजी एवं पं० काशीनाथजी मिश्र आदि के सम्पर्क में विद्याध्ययन किया।

कलकत्ता प्रवास के समय जब शर्माजी वेद परीक्षाओं की तैयारी कर रहे थे उस समय आर्य समाज कलकत्ता में ही रहते थे। उस समय आर्य समाज के उदारदानी सेठों एवं दूरदर्शी अधिकारियों ने इनकी विद्या की प्रवृत्ति के साथ चारित्रिक पवित्रता और योग्यता पर मुग्ध होकर इनकी पूरी सहायता की। पंडित जी अपनी विद्या, व्याख्यान, प्रवचन आदि से कलकत्ता आर्यसमाज और वेदधर्म की सेवा करते रहे।

जीवन के उत्तरार्ध में पं० रामावतार जी शर्मा एक बार फिर कलकत्ता पधारे और कुछ वर्षो तक दक्षिण कलकत्ता और खिदिरपुर अंचलों में अपना कार्यक्षेत्र बनाकर आर्यसमाज और वेदविद्या की सेवा करते रहे। इस अवधि में खिदिरपुर के श्री जनकलाल गुप्त ने शर्माजी को अच्छा सहारा दिया। श्री शर्माजी गुरुकुल महाविद्यालय हरपुरजान में आचार्य के रूप में सेवा करते रहे।

पं० रामावतार शर्मा ने यजुर्वेद का भाष्य तथा संस्कार विधि की विस्तारपूर्वक व्याख्या की। कुछ वर्ष पूर्व आपने सामवेद का भी भाष्य पूर्ण कर दिया था।

शर्माजी समाज सुधार में भी सक्रिय भाग लेते रहे। स्वयं सरयूपारीण होते हुए भी मैथिल ब्राह्मण कन्या से अपना स्वयं वैदिक विधि से विवाह करके पंडित जी ने एक क्रान्तिकारी पग उठाया था। सन् १९७५ ई० में आर्य समाज स्थापना शताब्दी के अवसर पर दिल्ली में आयोजित शताब्दी-समारोह के वेद-सम्मेलन में पं० रामावतार शर्मा को इनकी विद्वत्ता एवं वेदसेवा के लिए सम्मानित एवं पुरस्कृत किया गया था।

पंडित जी जीवन के अन्तिम दिनों में गुगरी, खगड़िया जिला मुंगेर में वार्द्धक्य काट रहे थे।

(आर्य समाज कलकत्ता के शतवर्षीय इतिहास से)

ओ३म्

आर्य-संसार

वर्ष ५५ अंक — ९

भाद्रपद-आश्विन २०७१ वि०
दयानन्दाब्द १९०
सृष्टि सं० १,९६,०८,५३,११४

सितम्बर— २०१४

मूल्य : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १०० रुपये
आजीवन : १००० रुपये

सम्पादक :
प्रो० उमाकान्त उपाध्याय,
एम. ए.

सह सम्पादक :
श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल
सहयोगी संपादक :
श्रीमती सरोजिनी शुक्ला
श्री सत्यप्रकाश जायसवाल
पं० योगेश राज उपाध्याय

इस अंक की प्रस्तुति

१. इस अंक की प्रस्तुति		३
२. मातृभूमि की रक्षा के आधार		४
३. महर्षि वचन सुधा-३६	-प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	७
४. शारदा देश कश्मीर जो कभी संस्कृत विद्या का केन्द्र रहा	-डॉ॰ भवानीलाल भारतीय	९
५. योग के साधकों को आश्वासन	-प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	११
६. हमारा मित्र	-श्री अभिमन्यु कुमार खुल्लर	१४
७. महर्षि का पत्र-साहित्य ही हिन्दी का प्रथम पत्र-साहित्य	-डॉ॰ अशोक आर्य	१७
८. तीन हजार वर्ष पूर्व मूर्त्तियों की पूजा नहीं होती थी	-श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'	२१
९. नर तन में पशु-वर्तन	-श्री देवनारायण भारद्वाज	२४
१०. एक पत्र अबुधाबी से	-श्री ज्ञानेश्वरार्य	२५

आर्य समाज कलकत्ता

१९, विधान सरणी, कोलकाता-७०० ००६, दूरभाष : २२४१-३४३९

email : aryasamajkolkata@gmail.com

'आर्य संसार' में प्रकाशित लेखों का उत्तरदायित्व सम्बन्धित लेखकों पर है ।
किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र कोलकाता ही होगा ।

मातृभूमि की रक्षा के आधार

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षातपो ब्रह्मयज्ञ: पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरु लोकं पृथिवी न: कृणोतु ।।

अथर्व० १२-१-१

शब्दार्थ :-

सत्यम्	=	सत्य, ईमान	सा	=	वह मातृभूमि, राष्ट्र
बृहत्	=	उद्यम (बृहू उद्यमने)	भूतस्य	=	व्यतीत की
ऋतम्	=	ऋजु, निश्छल	भव्यस्य	=	भविष्य की
उग्रम्	=	तेजस्विता	पत्नी	=	पालन, रक्षा करनेवाली
दीक्षा	=	प्रयोग विद्या, Practice	उरु	=	महान्, बृहत्
तप:	=	द्वन्द्वों को, कष्टों को सहना	लोकम्	=	राष्ट्र को, जनता को
ब्रह्म	=	ज्ञान विद्या, Theory	पृथिवी	=	मातृभूमि
यज्ञ:	=	यज्ञ, शिल्प, सहयोग	न:	=	हमारे लिए, जनता
पृथिवीम्	=	मातृभूमि को, राष्ट्र को	कृणोतु	=	करे
धारयन्ति	=	धारण करते हैं			

भावार्थ :- मातृभूमि को, राष्ट्र को आठ तत्व धारण करते हैं :- १. सत्य, ईमान, २. उद्यम, चेष्टा-परिश्रम, ३. निश्छलता, ४. वीरता, ५. प्रयोगविद्या, ६. द्वन्द्व-कठिनाइयां सहना, ७. विद्या-ज्ञान, ८. यज्ञ, शिल्प, सामञ्जस्य आदि । हे मातृभूमि ! तुम हमारे भूत (इतिहास), वर्तमान और भविष्य की रक्षा करनेवाली हो । हे मातृभूमि ! तुम हमको, हमारे राष्ट्र को महान् वना दो ।

विचार विन्दु :

१. आठों तत्त्वों की महत्ता पर विचार ।
२. यज्ञ का व्यापक स्वरूप-कृषि, शिल्प, उद्योग, विभिन्न वर्गों में सहयोग, समन्वय ।
३. भूत का गौरव वर्तमान का आधार है ।
४. वर्तमान भविष्य का आधार है ।
५. राष्ट्र की महानता पर विचार ।

व्याख्या

अपनी मातृभूमि, अपने राष्ट्र से प्रायः सभी को स्वाभाविक रूप से प्यार होता है । लोग अपने देश की रक्षा के लिए अपना जीवन तक बलिदान कर देते हैं । ठीक ही कहा है —

'जिसको न निजभाषा तथा निजदेश का अभिमान है ।

वह नर नहीं, नरपशु निरा है, और मृतक समान है ।।'

इस मंत्र में मातृभूमि की रक्षा के आधारों का वर्णन है । प्रथम तो यह ध्यान में रखने की बात है कि वेद में मातृभूमि और भूमि माता दोनों की अवधारणा है । मातृभूमि एक राष्ट्र देश से संबंधित है और भूमि माता सम्पूर्ण पृथ्वी के सभी देशों से संबंधित है । अर्थववेद के भूमि-सूक्त में कहा गया है —

'माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः ।'

भूमि माता है और हम भूमि-माता की सन्तान है । यहां इस मंत्र में देश की रक्षा, राष्ट्र की महत्ता के आठ तत्व बताए गये हैं । उनमें से प्रथम तत्व सत्य-नियम और उचित-कार्य हैं । जिस राष्ट्र में सत्य के प्रति, औचित्य के प्रति आग्रह नहीं है, वह राष्ट्र कभी चरित्रवान् और बलवान नहीं हो पाता । कभी-कभी राष्ट्र के दार्शनिक असत्य दर्शन, भ्रान्त-दर्शन झूठे सिद्धान्तों पर चलने लगते हैं । यूरोप के विकासवाद ने जो सामाजिक दर्शन दिया उसका मुख्य आधार था 'योग्यतम की जीत' (Survival of the fittest) । यह संघर्ष का, वर्ग-संघर्ष का दर्शन है । इसका सीधा अर्थ है कि बड़ी मछली को अधिकार है कि वह छोटी मछली को खा जाये । इस दर्शन के प्रचार से राष्ट्र में संघर्ष तो हो सकता है, शान्ति, सुव्यवस्था, राष्ट्रीय चरित्र में बल नहीं आ सकता । इस मंत्र में कहा गया है कि राष्ट्र के बल का सबसे बड़ा आधार राष्ट्र निवासियों के चरित्र में सत्य और उचित (Right and Proper) के प्रति आग्रह है । असत्य, अनुचित को प्रश्रय देना राष्ट्रीय अपराध है । इस प्रकार की नीति से राष्ट्र का पतन तो हो सकता है, उत्थान नहीं होगा ।

राष्ट्र का दूसरा आधार है 'बृहद्' - महान उद्यम (बृहू उद्यने) है । जो राष्ट्र उद्यमी परिश्रमी नहीं होता वह उन्नति नहीं कर सकता । राष्ट्र न झूठ पर टिकता है और न विलासिता पर टिकता है । आचरण में सत्य, व्यवहार में सत्य, स्वभाव में उद्यम आवश्यक है । भाग्यवादी राष्ट्र कभी उन्नति नहीं कर पाते । भाग्यवादी लोग परिश्रम से बचना चाहते हैं और गोस्वामी जी के शब्दों में 'कायर जन के एक अधारा, दैव दैव आलसी पुकारा ।' जिन राष्ट्रों के चरित्र में पुरुषार्थ नहीं होता वे उन्नति नहीं कर पाते ।

राष्ट्र का तीसरा तत्त्व है, 'ऋतम्' अर्थात् राष्ट्र निश्छलता से ही चलता है । चौथा तत्त्व है, 'उग्रम्' तेजस्विता । राष्ट्र में तेज, व्यक्ति में तेज, राष्ट्र का बल है । जहां तेज नहीं होगा वहां कायरता और कापुरुषता आयेगी । पांचवा तत्त्व, 'दीक्षा' है । दीक्षा का अर्थ अपनी विद्या का, अपने ज्ञान का प्रयोग है । जहां केवल ऊंची-ऊंची दर्शन की बातें होती हैं और प्रयोग नहीं होता वह राष्ट्र गिर जाता है । हमारे अपने देश में जब विदेशी हूण या अरब वाले आये तो सौ-दो सौ से अधिक नहीं थे । किन्तु सारे देश को पीटकर राजा बन गये । यहां गीता का दर्शन पढ़ते रहे— आत्मा अजर है, आत्मा अमर है, किन्तु चरित्र, जीवन, तेज, प्रयोग सब विलासिता में डूब गया था । राष्ट्र का छठा तत्व है, 'तप' । तप का मोटा अर्थ परिश्रम है । किन्तु तप का

वास्तविक अर्थ है —'स्वकर्म वर्तित्वं' अपने काम के प्रति सजगता । राष्ट्र में न कोई कार्य छोटा है और न कोई कार्य बड़ा है । छोटे-बड़े का भेद-भाव, गरीब, किसान, मजदूर की उपेक्षा और असम्मान राष्ट्र को डुबो देते हैं । देश में प्रत्येक व्यक्ति का सम्मान होना चाहिए। राष्ट्र का सातवां तत्व है 'ब्रह्म' = विद्या । विद्यालय और विश्व-विद्यालय की उपेक्षा से राष्ट्र निर्बल हो जायेगा । आज हमारे देश में विद्या के प्रति उपेक्षा का भाव चिन्ता का विषय है। धन, वेतन, सम्मान ने सर्वोत्तम मस्तिष्कों को विद्यालय और विश्व-विद्यालय से खींच कर उद्योग और व्यवस्था में लगा दिया है । यह शुभ नहीं है । इसका परिणाम राष्ट्र को अवश्य भोगना पड़ेगा। राष्ट्र का आठवां और अंतिम तत्व है, यज्ञ-समन्वय, सामंजस्य और संगतिकरण । कृषि और उद्योग, किसान और उद्योगपति, बड़े-बड़े डाक्टर, इंजीनियर, सेना के सिपाही सबका यथा योग्य सम्मान होना चाहिए ।

इस मंत्र में राष्ट्र को धारण करने वाले तत्वों का वर्णन है । इस संबंध में एक बात तो यह समझ लेने योग्य है कि यहां धारण शब्द शासन (governace) का पर्याय है । शासन का अर्थ पुलिस, सेना और न्यायालय, अर्थात् शान्ति, सुरक्षा और न्याय के संगठन मात्र नहीं है । शासन का वास्तविक भाव यह है कि पुलिस, सेना और न्यायालय की कम से कम आवश्यकता पड़े और राष्ट्र में शान्ति, सुरक्षा, सुव्यवस्था बनी रहे ।

इस मंत्र में दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि राष्ट्र के शासन के लिए अभौतिक तत्वों पर अधिक बल दिया गया है । जनता में सत्य सत्याचरण के प्रति लगाव हो । स्वभाव से परिश्रमशीलता हो, ऋतम् - उचित (proper) के लिए आग्रह हो। जनता राष्ट्र हितों के लिए दीक्षित, कृतसंकल्प हो और अपने काम में पूरी रुचि ले-'तपः स्वकर्मवर्तित्वम्'-अपने काम में पूर्ण रूप से लगना और विभिन्न वर्गों का आपस में समन्वय, सहयोग बना रहे । किसानों के मूल्य पर उद्योगों की उन्नति न हो, अर्थात् उद्योग, कल-कारखाने चलें और उन्नति करें इसलिए किसानों के उत्पादन को कम मूल्य पर न खरीदा जाये । इसी प्रकार उद्योगों के उत्थान को भी उचित महत्व मूल्य दिया जाये । कृषि - प्राथमिक क्षेत्र (Primary sector), उद्योग—द्वितीयक क्षेत्र (Scondary sector) और सेवा—तृतीयक क्षेत्र (Territory sector) । सभी में सामञ्जस्य, सहयोग-यज्ञ भावना बनी रहे ।

ध्यान रखना चाहिए कि शासन के ये सभी तत्व भावनात्मक अधिक हैं, अनुशासनात्मक कम हैं । राष्ट्र का प्राण भावनात्मक एकता और समन्वय है भले ही हम इसे आज की भाषा में Emotional Integrity कह लें ।

राष्ट्र हमारे भूतकाल की-इतिहास की रक्षा करता है और भविष्यत् को संवारता है । अतः प्रार्थना है कि हमारा राष्ट्र, हमारी मातृभूमि हमको, हमारे देशवासियों को महान् बना दें । जिस राष्ट्र के निवासी अपने राष्ट्र की, राष्ट्र के गौरव की रक्षा करते हैं, राष्ट्र उन्हें महान् बना देता है। ध्यान रखना चाहिए कि राष्ट्र रक्षा केवल सीमाओं की ही रक्षा नही है । राष्ट्र की सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, सभी की रक्षा राष्ट्र रक्षा में सम्मिलित है ।

साभार : वेद-वीथिका

●

''महर्षि वचन सुधा' (३६)

– प्रो० उमाकान्त उपाध्याय

''तीर्थ समीक्षा''

'प्रश्न–जो-जो तीर्थ वा नाम का माहात्म्य अर्थात जैसे 'अन्य क्षेत्रकृतं पापं काशीक्षेत्रे विनश्यति' इत्यादि बात सच्ची है वा नहीं ?

उत्तर– नहीं । क्योंकिजो पाप छूट जाते हों तो दरिद्रों को धन, राज, अन्धों को आँख मिलती । कोढ़ियों का कोढ़ आदि रोग छूट जाता, ऐसा नहीं होता । इसलिए पाप वा पुण्य किसी का नहीं छूटता ।''

—सत्यार्थ प्रकाश एकादश समु०

समीक्षा–

महाभारत काल के पश्चात् बहुत दिनों तक थोड़ा-थोड़ा वेद विद्या का प्रचार रहा, किन्तु महाभारत काल से दो-तीन हजार वर्ष पश्चात् शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सम्प्रदाय चल पड़े । शुद्ध सिद्धान्त लुप्त होने लगे । धर्म की जगह पाखण्ड, अपसिद्धान्त, धर्म में धूर्तता आदि का चलन हो गया । अवतारवाद, देवी देवता सब की पाखण्डी वेद विरुद्ध कल्पनाएँ होने लगीं । प्रस्तुत उद्धरण में नाम पापक्षमा और तीर्थ इन तीनों का संदर्भ आया हुआ है ।

परमेश्वर का एक नाम ओ३म् है, अर्थपूर्वक उसका जप करना और उसी के अनुकूल जीवन बनाना वैदिक सिद्धान्त है— 'तज्जपस्तदर्थभावनम्' योग का यह सिद्धान्त ठीक है और आचरणीय है, किन्तु मध्यकाल में राम, कृष्ण, शिव, हरि, गणेश, गौरी, काली आदि अनेकों देवी देवताओं के नाम जपे जाने लगे और इतनी अत्युक्ति की गयी कि— 'एक हरि नाम जोतो पाप हरे, पापीर साध्य नाइ ततो पाप करे ।' ऐसे सिद्धान्तों से पाप की प्रवृति बहुत बढ़ गयी और लोगों का आचरण चरित्र भ्रष्ट होने लगा । शराब, मांस, जुआ, वेश्यागमन, व्यभिचार अदि बहुत बढ़ गया । परमेश्वर के नाम स्मरण का और तदनुकूल अपना जीवन चरित्र निर्माण करने से लाभ होता है । किन्तु केवल नाम जपे और आचरण न सुधारे तो इससे कोई लाभ नहीं होता । प्राचीन काल में नदियाँ आवागमन का साधन और पवित्र जल का स्रोत थीं । जगह-जगह पर विद्वान् साधक सन्त अपना आश्रम बनाकर रहते थे और अपने शिष्यों को पढ़ाते भी थे तथा साधना भी कराते थे । हरिद्वार, ऋषिकेश, प्रयाग, काशी आदि ऐसे ही क्षेत्र थे । परवर्ती काल में लोग त्याग, तप, साधना, जीवन का सुधार, यह सब तो भूल गये, केवल तीर्थ-तीर्थ ही लोगों के जीवन में रह

गया। लोग समझने लगे कि तीर्थ स्थानों में नहा लेने से, नदी में, सरोवर आदि में डुबकी लगा लेने से ही मोक्ष हो जायगा। लोग समझने लगे कि इन तीर्थों में नहाने से पाप धुल जाते हैं। उत्तर प्रदेश में सुल्तानपुर जिले में ''धो पाप'' एक तीर्थ भी है।

गंगा हरिद्वार, में, ऋषिकेश में, गंगोत्री में इतनी पवित्र और शुद्ध मानी जाती थी कि गंगा के जल में कीड़े नहीं पड़ते थे, किन्तु अब गंगा अपवित्र हो गयी है और गंगोत्री या बद्रीनाथ या केदारनाथ सभी जगह लोग आने-जाने लगे है।

एक सोचने की बात यह है कि यदि गंगा में, त्रिवेणी में डुबकी लगाते ही यह संसार छूट जायेगा और सीधे स्वर्ग चले जायेंगे और बाल-बच्चे, नाती, पोते, घर-कारबार, रुपये-पैसे सब छूट जायेंगे तो शायद लाखों में कोई एकाध ही गंगा में स्नान करने या त्रिवेणी में डुबकी लगाने जायेगा। इस तरह तीर्थ यात्रा जो कहते हैं वे अपने साथ भी धोखा करते हैं।

एक विशेष बात— लोग कहते हैं कि अच्छा काम करने से पाप नष्ट हो जाते हैं। पुण्य अधिक होगा और पाप कम होगा तो पाप और पुण्य का समीकरण होकर पाप धुल जायेंगे। किन्तु यह भ्रष्ट सिद्धान्त है। पाप और पुण्य अलग-अलग राशियां हैं इनका जोड़-घटाव, योग-वियोग नहीं होगा। जैसे गाय और घोड़े विषम राशियाँ है। उदाहरण के लिए यदि एक गाय पाँच हजर रुपये में आती है तो दो घोड़ों का मूल्य दस हजार रुपये लगाना भूल है क्योकि गाय और घोड़े विषम राशियाँ हैं।

इसी प्रकार पुण्य और पाप विषम राशियाँ है। किसी ने शराब पिया, व्यभिचार किया, चोरी की तो यह सब पाप है, अब वह दान करता है या अच्छे काम करता है, विद्यालय, धर्मशाला आदि की सुव्यवस्था करता है तो इन पुण्य कार्यों से चोरी आदि पाप कार्यों का योग-वियोग नहीं होगा।

शुद्ध सिद्धान्त है **''अवश्यमेव भोगतव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्''** शुभ और अशुभ कर्मों का फल अलग-अलग अवश्य ही भोगना पड़ता है। तीर्थ, नाम का केवल जप, जाप, क्षमा सभी भ्रष्ट सिद्धान्त हैं। परमेश्वर के नाम ओम् का जप करें, इसके अर्थ की भावना करें और अपना आचरण सुधारें तभी मनुष्य का कल्याण हो सकता है।

फोन : (०३३) २५२२२६३६
मो० : ९४३२३०१६०२

ईशावास्यम्
पी-३०, कालिन्दी
कोलकाता-७०००८९

शारदा देश कश्मीर जो कभी संस्कृत विद्या का केन्द्र रहा

डॉ० भवानीलाल भारतीय

आज जम्मू व कश्मीर राज्य की राजभाषा उर्दू है। सच तो यह है कि उर्दू भारत तथा पाकिस्तान के किसी भी प्रान्त की मातृभाषा नहीं है। पाकिस्तान में सिंधी, पंजाबी, बलोची तथा पश्तो भाषाओं का चलन है तो भारत के गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, केरल, तमिलनाडु तथा आंध्र में वहां के मुसलमान गुजराती, मराठी, बंगला, मलयालम, कन्नड़, तमिल तथा तेलुगु आदि का प्रयोग मातृभाषा की भांति करते हैं। दिल्ली, लखनऊ तथा हैदराबाद आदि दो तीन शहरों की बात छोड़ दें तो उर्दू किसी भारतीय राज्य की मुख्य भाषा नहीं है। तथापि कश्मीर में हिन्दी का भी प्रचलन नहीं के बराबर है, संस्कृत की चर्चा तो दूर की बात है।

इस स्थिति में कौन इस बात पर विश्वास करेगा कि किसी समय कश्मीर राज्य संस्कृत विद्या का केन्द्र रहा था। यहां उत्पन्न संस्कृत कवियों ने उच्च कोटि के काव्य की रचना की तो यहां के शास्त्र मर्मज्ञ एवं साहित्य शास्त्रवेत्ता विद्वानों ने काव्य मीमांसा में उच्च मानदण्ड स्थापित किये। यहां के दार्शनिकों ने प्रत्यभिज्ञा दर्शन को जन्म दिया तो इतिहासज्ञों ने कश्मीर के समसामयिक इतिहास को अपने ग्रन्थों में विवेचना की। सरस्वती की क्रीड़ास्थली इस कश्मीर को महाकवि बिल्हण ने यदि **शारदा देश** कहा, तो यह उचित ही था, अत्युक्ति नहीं थी? यहां के संस्कृत विद्वानों के नामों में भी एक विशिष्टता दृष्टिगोचर होती है। एक ओर कल्हण, बिल्हण, जल्हण, शिल्हण जैसे नाम हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं जो 'ण' वर्ण पर समाप्त होते हैं तो दूसरी ओर उव्वट, कैयट, मम्मट, रूद्रट तथा उद्भट आदि 'ट' अन्त वाले नाम हैं। इन नामों को सुनते ही हम इस निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि यह व्यक्ति कश्मीर वास्तव्य है। कितनी विडम्बना है कि संस्कृत के उपर्युक्त विद्वानों की धरोहर की रक्षा करने वाले वहां के पण्डित वर्ग को घाटी से एक सुविचारित दुरभिसन्धि के द्वारा मुल्क-बदर (देश से निष्कासित) किया गया। गुजरात के दंगों पर आंसू बहाने वालों को इस बात की क्या चिन्ता है कि कश्मीर के निवासी इन पण्डितों को अपने जन्म स्थान से क्यों हटाया गया?

प्रथम हम यहां के संस्कृत कवियों की चर्चा करें। गौड अभिनन्द नामक कवि ने लघु योग वासिष्ठ की रचना की। पांच हजार से कुछ कम श्लोकों में रचा गया यह ग्रन्थ प्रसिद्ध दर्शनग्रन्थ 'योगवासिष्ठ' का का काव्यरूप है। **नव साहसांक चरित** के रचयिता पद्मगुप्त ने अपने आश्रय दाता राजा के गुणों व शील का वर्णन इस काव्य में किया है। एक अन्य काव्य **कुट्टनीमत** की रचना कश्मीर नरेश जयादित्य के प्रधान अमात्य दामोदर गुप्त ने की थी। यह काव्य लोक जीवन के उस पहलू को उजागर करता है जो वारांगनाओं से सम्बन्ध रखता है। अभिशप्त तथा लोकनिंदा सहने वाली ये बालाएं कैसा जीवन जीती हैं इसे इस ग्रन्थ में देखा जा सकता है। कश्मीर के एक नरेश मातृगुप्त स्वयं कवि थे और श्रेष्ठ काव्य रचना करते थे। यहां कवि भर्तृमेंठ के नाम का उल्लेख आवश्यक है जिसने **हयग्रीववध** नामक काव्य प्रसिद्ध पौराणिक कथानक को आधार बना कर लिखा। इस काव्य में वक्रोक्तियों का प्रयोग इतना चमत्कारपूर्ण है कि काव्य मीमांसा के लेखक आचार्य राजशेखर ने उसकी विस्तृत चर्चा की है। यहां आचार्य क्षेमेन्द्र का उल्लेख आवश्यक है। यों तो काव्य में 'औचित्य' नामक तत्व का महत्व सिद्ध कर आचार्य क्षेमेन्द्र ने काव्य विवेचना को नया आयाम दिया था। उनका ग्रन्थ **''औचित्य विचार चर्चा''** इस विषय का प्रामाणिक ग्रन्थ है। तथापि यह नहीं भूलना चाहिए कि वे स्वयं संस्कृत के रस सिद्ध कवि थे।

रामायण मंजरी, भारतमंजरी तथा **बृहत कथा मंजरी** आदि ग्रन्थों के द्वारा उन्होंने अपने काव्य नैपुण्य को व्यक्त किया है। इस प्रकार पुरातन इतिहास ग्रन्थों को नई शैली में पद्य रूप देना उनकी विशेषता थी।

क्षेमेन्द्र ने अलंकार शास्त्र से सम्बन्धित ग्रन्थों में **कवि कण्ठाभरण** तथा **सुवृत्त तिलक** का उल्लेख भी आवश्यक है। उनका लिखा **'श्रीकण्ठ चरित'** भक्ति प्रधान काव्य है जिसमें भगवान शिव द्वारा त्रिपुरासुध वध के कथानक को निबद्ध किया गया है।

बिल्हण के **विक्रमांक देव चरित** की चर्चा के प्रसंग में यह कहना आवश्यक है कि उनका कश्मीर को शारदा देश कहलाना सर्वथा उचित था क्योंकि यही वह रम्यभूमि है जहां सरस्वती ने अपने लीला विलास को काव्य कृतियों के माध्यम से व्यक्त किया था।

अब साहित्य शास्त्र से सम्बद्ध ग्रन्थों की चर्चा करें।

साहित्यालोचन के विभिन्न सम्प्रदाय प्रवर्त्तकों की जन्मदात्री यही भूमि है। अलंकार शास्त्र में आचार्य **भामह** नाम सर्वोपरि है। **काव्यालंकार** की रचना कर उन्होंने काव्य में अलंकारों के महत्व को स्थापित किया। आचार्य वामन ने **'रीति'** को काव्य की आत्मा ठहराया - **रीतिरात्मा काव्यस्य** और वैदर्भी, गौड़ी तथा पाञ्चाली आदि का निरूपण किया। वामन के अनुसार अलंकारों के मूल में तीन तत्व प्रधान है- **औपम्य** (उपमा देने वाले) **अतिशय** (अतिशयोक्ति पूर्णकथन) तथा **श्लेष** - द्विविध अर्थों के बोधक शब्दों का प्रयोग। इन्ही मूल तत्वों से विभिन्न अलंकार बनते हैं।

'ध्वन्यालोक' ग्रन्थ के लेखक, आचार्य आनन्दवर्द्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा बताया। **'काव्यस्य आत्मा ध्वनिरिति बुधै समाग्नाय:'**, कह कर उन्होंने ध्वनि प्रधान काव्य को ही श्रेष्ठ ठहराया। महिम भट्ट ने **व्यक्ति विवेक** लिखा, **रुय्यक** ने **अलंकार सर्वस्व** की रचना की तथा ध्वनि सम्प्रदाय के मूल ग्रन्थ ध्वन्यालोक की **लोचन** नामक टीका लिख कर आचार्य अभिनव गुप्त ने साहित्य ..... शास्त्र को यह नहीं भूलना चाहिए की आचार्य अभिनव गुप्त मात्र साहित्य मीमांसक ही न थे। वे दार्शनिक भी थे। प्रत्यभिज्ञा नामक शैव दर्शन की स्थापना का श्रेय उन्हें ही है। यही कारण है कि कश्मीर में वर्षो तक शैव सम्प्रदाय का बोलबाला रहा। अब रस सिद्धान्त की यदि - चर्चा करें तो आचार्य मम्मट के **काव्य-प्रकाश** का नाम प्रथम पंक्ति में है। मम्मट ने काव्य की जो परिभाषा दी, यद्यपि उसकी व्याख्याएं आगे चलकर आचार्यो ने भिन्न भिन्न प्रकार से की तथापि उनकी दी गई काव्य परिभाषा **'तद्दोषौशब्दौर्षा सगुलावनलंकृती पुन: क्वापि'** - काव्य वह शब्द और अर्थ का समूह है जो दोषरहित है, यत्र तत्र अलंकारों का उसमें प्रयोग होता भी है किन्तु यह अनिवार्य नहीं है। **अलंकाररहित** काव्य भी श्रेष्ठ हो सकता है, यह अवश्य है कि वह रस से युक्त हो। कालान्तर में भट्ट लोलट्ट, आचार्य शंकुक तथा आचार्य अभिनवगुप्त ने उक्त परिभाषा सूत्र की विभिन्न व्याख्याएं की।

प्राय: आक्षेप लगाया जाता है कि भारत में इतिहास के प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं लिखे गये। इसके उत्तर में यदि हम कल्हण की **राजतरंगिणी** को प्रस्तुत करें तो उक्त आक्षेप कहीं नहीं टिकता । कल्हण राजा हर्षदेव के प्रधानमंत्री थे। आठ तरंगों में निबद्ध यह इतिहास तत्कालीन शासन व्यवस्था, सामाजिक स्थिति तथा धार्मिक दशा का वस्तुनिष्ठ जानकारी देता है। अन्तत: कहना पड़ता है कि कश्मीर की नैसर्गिक सुषमा ने यदि लोगों को मुग्ध किया तो वहां के विद्वानों के वैदुष्य ने सारस्वत समाज को चमत्कृत किये रखा था।

३/५, शंकर कालोनी
श्रीगंगानगर

योग के साधकों को आश्वासन

प्रो० उमाकान्त उपाध्याय

महर्षि पतञ्जलि ने अपने योगदर्शन में योग के आठ अंग बताये हैं — (१) यम (२) नियम (३) आसन (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार (६) धारणा (७) ध्यान और (८) समाधि । इनमें प्रथम के चार यम, नियम, आसन और प्राणायाम बहिरंग योग कहलाते हैं । अन्त के चार प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि अन्तरंग योग हैं ।

यम पाँच प्रकार के होते हैं —

''तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।।''

—यह योगदर्शन का वचन है ।

अर्थात् (अहिंसा) वैरत्याग, (सत्य) सत्य ही मानना, सत्य ही बोलना और सत्य ही करना, (अस्तेय) अर्थात् मन, कर्म, वचन से चोरी त्याग, (ब्रह्मचर्य) अर्थात् उपस्थोन्द्रिय का संयम, (अपरिग्रह) अत्यन्त लोलुपता, स्वत्वाभिमानरहित होना, इन पाँच यमों का सेवन सदा करें ।

नियम —

''शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।।''

—यह योगशास्त्र का वचन है ।

(शौच) अर्थात् स्नानादि से पवित्रता, (सन्तोष) सम्यक् प्रसन्न होकर निरुद्यम रहना सन्तोष नहीं, किन्तु पुरुषार्थ जितना हो सके उतना करना, हानि-लाभ में हर्ष वा शोक न करना, (तपः) अर्थात् कष्टसेवन से भी धर्मयुक्त कर्मो का अनुष्ठान, (स्वाध्याय) पढ़ना-पढ़ाना, (ईश्वरप्रणिधान) ईश्वर की भक्तिविशेष से आत्मा को अर्पित रखना, ये पाँच नियम कहाते हैं ।

यमों के बिना केवल इन नियमों का सेवन न करें, किन्तु इन दोनों का सेवन किया करें । जो यमों का सेवन छोड़ के, केवल नियमों का सेवन करता है, वह उन्नति को प्राप्त नहीं होता, किन्तु अधोगति अर्थात् संसार में गिरा रहता है ।

इस तथ्य के समर्थन में निम्नलिखित मनुस्मृति का श्लोक देखने योग्य है —

''यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः ।
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ।।'' —मनु० ४।२०४

यम और और नियम जीवन जीने के महत्वपूर्ण अंग है, इनके अभाव में योग की साधना असम्भव है । यहाँ एक और सच्चाई ध्यान में रखनी चाहिये कि सदाचारी गृहस्थ भी योग की साधना आराम से कर सकता है ।

योग का तीसरा अंग है आसन । योगदर्शन का सूत्र है —

''स्थिरसुखमासनम्'' योगसाधना के लिये लम्बे समय तक स्थिर होकर सुखपूर्वक बैठना । योगसाधना के लिये मुख्य रूप से सिद्धासन, पद्मासन व, सुखासन बताये जाते हैं । आसन के सम्बन्ध

में मुख्य बात यह है कि दोनों पुट्ठे समान रूप से आसन पर स्थित हों, कमर में जहाँ त्रिकास्थि है वहाँ से मेरूदण्ड गर्दन तक सीधा रहे । इससे इडा, पिङ्गला और सुषुम्णा तीनों नाड़ियाँ खुली रहें और प्राणों का आवागमन होता रहे । साधना के लिये इतना ही आसन पर्याप्त है ।

योग का चतुर्थ अंग है प्राणायाम । प्राणायाम में प्राणों को श्वास से दोनों नथुनों से बाहर निकालकर रोकना वायु और मूल को संकुचित करना लाभकारी है । अधिक देर बाह्यवृत्ति अर्थात् बाहर रोकना उत्तम है । स्वाभाविक रूप से श्वास अन्दर लेकर थोड़ा रोककर फिर बाहर रोकना मूल पायु का संकोच करना लाभकारी है । इससे इडा, पिङ्गला और सुषुम्णा तीनों खुलकर सक्रिय हो जाती हैं और साधना में सहयोग मिलता है ।

यम, नियम, आसन और प्राणायाम, ये चारों बहिरंग हैं । प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये चारों अन्तरंग योग हैं । प्रत्याहार का अर्थ है कि ज्ञान इन्द्रियों को वाह्य विषयों से अन्तर्मुखी करके परमेश्वर में ध्यान लगाना । भगवान ने आँख, कान, नाक आदि ज्ञान इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है, इसीलिये वे बाहर के विषयों को आसानी से ग्रहण कर लेती हैं । उन्हें अन्तर्मुखी करके परमेश्वर के गुण, चिन्तन में लगाना प्रत्याहार है, इसीलिये योगसाधना के समय आँखे अधखुली बन्द कर लेते हैं । कई लोग कानों में रूई का फूहा भी लगा लेते हैं । इससे बाहर के दृश्य, शब्द आदि नहीं सुनायी पड़ते । अन्तरंग योग का द्वितीय साधन ''धारणा'' है । धारणा की परिभाषा है – **''देशबन्धचितस्यधारणा ।''** चित्त को किसी एक स्थान पर बांध देना । कई लोग दीपक की लौ पर भी धारणा करते हैं । किन्तु परमेश्वर की धारणा के लिये हृदय पुण्डरीक – दोनों छातियों के बीच में खाली जगह पर, नासिकाग्र दोनों भौंहों के बीच में आज्ञा चक्र पर (जहाँ पिट्यूटरी ग्लैण्ड्स) और सिर में सहस्त्रार (जहाँ खोपड़ी में पिलपिला है) उत्तम स्थान है ।

इसके पश्चात् ध्यान का क्रम आता है । योगदर्शन में कहा है – ''तत्रैयिकतानता ध्यानम्।'' धारणा को एकरस बनाये रखना, कोई विच्छेद न होने देना ध्यान है । ध्यान में परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का निरन्तर चिन्तन करते रहना उचित है । इसका पूर्ण अभ्यास हो जाने पर समाधि लग जाती है । समाधि में सब कुछ भूल जाता है । ध्यान करने वाला अपने को भूल जाता है, मैं ध्यान कर रहा हूँ यह भी भूल जाता है । केवल परमेश्वर का चिन्तन मात्र ही ध्यान में रह जाता है । समाधि भी सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात दो तरह की होती है । इस समय समाधि के इन दोनों भेदों को अब छोड़ रहे हैं, यह साधना का ऊँचा विषय है । योग साधना में समाधि तक पहुँचना अनेक जन्मों में सिद्ध हो पाता है ।

अर्जुन ने श्रीकृष्ण से गीता में पूछा है यदि कोई मनुष्य योग साधना करता-करता भटक जाये तो उसकी क्या गति होती है –

''अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ।।'' गीता० ६।३७

अर्जुन बोले–हे श्रीकृष्ण । जो योग में श्रद्धा रखनेवाला है : किन्तु संयमी नहीं है, इस कारण

जिसका मन अन्तकाल में योग से विचलित हो गया है, ऐसा साधक योग की सिद्धि को अर्थात् भगवत्साक्षात्कार को न प्राप्त होकर किस गति को प्राप्त होता है ?

श्रीकृष्ण जी उत्तर देते हैं कि योग का मार्ग कल्याण का मार्ग है । योग के मार्ग में चलने वाले की कभी दुर्गति नही होती । गीता में श्रीकृष्ण के आश्वासन ध्यान देने योग्य है —

''पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति ।।'' गीता० ६।४०

श्रीभगवान् बोले—हे पार्थ । उस पुरुष का न तो इस लोक में नाश होता है और न परलोक में ही । क्योंकि हे प्यारे ! आत्मोद्धार के लिये अर्थात् भगवत्प्राप्ति के लिये कर्म करने वाला कोई भी मनुष्य दुर्गति को प्राप्त नहीं होता ।

''प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योग भ्रष्टोऽभिजायते ।।'' गीता० ६।४१

योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानों के लोकों को अर्थात् स्वर्गादि उत्तम लोकों को प्राप्त होकर, उनमें बहुत वर्षो तक निवास करके फिर शुद्ध आचरण वाले श्रीमान् पुरुषों के घर में जन्म लेता है ।

अथवा वैराग्यवान पुरूष उन लोकों में न जाकर ज्ञानवान् योगियों के ही कुल में जन्म लेता है । परन्तु इस प्रकार का जो यह जन्म है, सो संसार में निःसन्देह अत्यन्त दुर्लभ है ।

''तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ।।'' गीता० ६।४३

वहाँ उस पहले शरीर में संग्रह किये हुए बुद्धि-संयोग को अर्थात् समबुद्धिरूप योग के संस्कारों को अनायास ही प्राप्त हो जाता है और हे कुरुनन्दन ! उसके प्रभाव से वह फिर परमात्मा की प्रतिरूप सिद्धि के लिये पहले से भी बढ़कर प्रयत्न करता है ।

''पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ।।'' गीता० ६।४४

वह श्रीमानों के घर में जन्म लेनेवाला योगभ्रष्ट पराधीन हुआ भी उस पहले के अभ्यास से ही निःसन्देह भगवान् की ओर आकर्षित किया जाता है, तथा समबुद्धिरूप योग का जिज्ञासु भी वेद में कहे हुए सकाम कर्मो के फल को उल्लङ्घन कर जाता है ।

''प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्विषः ।
अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ।।'' गीता० ६।४५

परन्तु प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करनेवाला योगी तो पिछले अनेक जन्मों के संस्कार बल से इसी जन्म में संसिद्ध होकर सम्पूर्ण पापों से रहित हो फिर तत्काल ही परमगति को प्राप्त हो जाता है।

इस सबका यही आशय है कि मनुष्य को जहाँ तक सुयोग सुविधा मिले, शरीर साथ दे, परमेश्वर के साक्षात्कार के लिये योगसाधना अवश्य करते रहना चाहिये ।

सम्पर्क - ''ईशावास्यम्''
पी-३०, कालिन्दी हाऊसिंग स्टेट
कोलकाता-७०००८९
फोन : ०३३-२५२२२६३६
मो० : ९४३२३०१६०२

हमारा मित्र

– श्री अभिमन्यु कुमार खुल्लर

इस संसार में आने के पश्चात हम बचपन से ही मित्र बनाने लगते हैं । सांसारिक प्रवाह में अनेक मित्र जुड़ते हैं और अनेक मित्र पीछे छूट जाते हैं, न हम उन्हें याद करते हैं और न ही वे हमें । हमें बुरा भी नहीं लगता । शायद इसे ही संसार की रीत कहते हैं । यह समझने का मौका आयु के अंतिम पड़ाव में ही मिलता है, उससे पहले नहीं। मैं एक ऐसा मित्र जानता हूँ, जो होता तो सब के साथ है, पर जब आप उसे मित्र मानकर चलना प्रारम्भ कर देते हैं तो वह आपका साथ कभी नहीं छोड़ता ।

ईश्वर के साथ व्यक्ति ने अनेक सम्बंध बनाये हैं- माता-पिता, गुरू-दाता और न जाने क्या-क्या। ये सब सम्बंध ईश्वर को उच्चासन पर और भक्त को नीचे आसन पर बिठा देते हैं। मुझे ये संबंध जोड़ने में उतना आनन्द नहीं आया, जितना मित्र का संबंध जोड़ने से आया। 'मैत्री' शब्द में अपनत्व की प्रगाढ़ता, विश्वास, खुलापन, और बराबर की हिस्सेदारी अन्तर्भूत है। सामान्यतया यही कहते हैं कि संकट में, विपत्ति में जो काम आए वहीं मित्र कहलाता है। यह पैमाना ठीक है, पर छोटा है। मित्र की यह परिभाषा जब दृष्टिगोचर हुई तो मैं उछल पड़ा - सच्चा मित्र वही है जो आपके अत्यन्त गुप्त भेद को, किसी भी संकट में पड़ने पर प्रकट नहीं करता।

मेरी यह बात वही समझ सकता है, जिसको यह बात अनुभव करने का मौका हो। मौका मिलता तो अनेक को है पर मित्रता की कलई उतारने का यह स्वर्ण अवसर बन जाता है। दूसरे को चाहे वह निकट संबंधी हो या घनिष्ठ मित्र, नीचा दिखा कर, अपना सिद्ध करने की लालसा इतनी प्रबल होती है कि मित्रता भाड़ में झोंक कर भी वह सुख उठाता ही है। पर यदि ऐसा मौका मिले और आप परपीड़ा जनित सुख का लोभ संवरण कर पाएं, जो आप अनचाहे उच्चासन पर विराजमान हो जाते हैं और सर्वाधिक विश्वसनीय बन जाते हैं।

मैं व्यक्तिगत जीवन से यथार्थ उदाहरण प्रस्तुत करना चाहूँगा। नाम-पते का उल्लेख नहीं कर सकूँगा। छद्म नाम-पता भी नहीं लिखूँगा। कार्यालय के वरिष्ठ अधिकारी ने जिनसे मेरा कोई घनिष्ठ संबंध नही था और परिचय भी कुछ पुराना नहीं था, मुझसे पूछा कि कार्यालय के पश्चात मैं उनके घर आ सकता हूँ। कारण पूछने पर कहा कि घर पर ही बताऊँगा। पता पूछ कर घर पहुँच गया। घर पर कहा- पास वाले मकान में चलो। वहाँ जो उन्होंने कथा सुनाई तो मुझे इस बात पर आश्चर्य हुआ कि एक अनजान व्यक्ति पर उन्होंने इतना भरोसा कैसे किया और उन्हें कैसे विश्वास हुआ कि मैं उनकी सहायता करूँगा। पैतृक जीन्स में निडरता मिली है, शरीर भी काफी हृष्ट-पुष्ट था। मैने स्वीकृति दे दी। किस्सा यह था कि उनकी नवयौवना पुत्री, एम०ए० की छात्रा, एक मात्र संतान एक आवारा गुण्डे के चंगुल में फंस गई थी। जाने किन परिस्थितियों में उसके घर में आना-जाना हो गया था। दिन ब दिन उस लड़के का शिकंजा कसता जा रहा था। जब पानी सिर से ऊपर हो गया तो उनके लिये जीवन-मरण का प्रश्न बन गया। कॉलोनी में वह और उसके यार-दोस्त चक्कर लगाते ही रहते थे। लड़की को निकालना और परिवार को भी। मैंने उनसे कहा लड़की को बुलाइए, मैं उसे अपने घर ले जाता हूँ। आप सपरिवार सुविधा अनुसार आ जाइए। एक घण्टे में वे लोग भी घर पर आ गए। सुबह २ बजे पठानकोट एक्सप्रेस से वह लड़की को लेकर रिश्तेदारी में जाना चाहते थे। उनका घर स्टेशन के पास ही था इसलिये गुण्डों द्वारा घिर जाने की आशंका के कारण मुझे भी साथ ले गए। लड़की की व्यवस्था कर तीन चार दिन बाद ही ग्वालियर लौट आए। आते ही कहा- एक काम और करो। अभी ग्वालियर में हमारा रहना नहीं

हो पाएगा, कहीं रेसीडेन्ट ऑफिस में पोस्टिंग कराओ। यह काम बड़ा था। फिर भी मैंने हिम्मत की। संबंधित अधिकारी को जब बताया कि महाशय मय अपने माता-पिता के मेरे घर पर टिके हुए है तो अधिकारी महोदय ने मेरी बात की सत्यता पर पूर्ण विश्वास कर ग्वालियर के बाहर तीन साल के लिये उनकी पदस्थापना तत्काल कर दी। प्रकरण हम दोनों के बीच ही रहा। अब तो मुझे भी सेवानिवृत्त हुए १७ वर्ष हो गये है। वह कहाँ हैं, मुझे ज्ञान नहीं। मुझे आज भी प्रकरण याद कर संतोष मिलता है, सुख मिलता है कि उनके परिवार की मर्यादा पर आँच नहीं आई। कुछ घटनाओं का वर्णन कर सकता हूँ पर इसलिये नहीं कर पाऊँगा कि पात्र जीवित हैं और आस पास घूम रहे है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि ऐसे कर्म ईश्वर जोड़ के खाते में अवश्य रख लेता होगा। इस जीवन में ऐसे प्रसंगों से आपका आत्मबल बढ़ता है। ईश्वर पर विश्वास गहराता जाता है, क्योंकि ईश्वर स्वयं करोड़ों लोगों के अत्यन्त गोपन रहस्यों को प्रकटतया उजागर नही करता। एक तो यह मानवीय कार्य व्यापार है दूसरे आग लगाकर मजा लूटना भी उसका गुण-धर्म नहीं है।

ईश्वर की मित्रता में दूसरा गुण उसकी सहायता करने की अपार सामर्थ्य है। वह जैसी सहायता करता है, उसे देखकर हम अनायास ही कह उठते हैं, यह दैवी सहायता है, प्रभु की कृपा है। वेद मर्मज्ञ पं० शिवनारायण उपाध्याय जी (कोटा) ने मुझे एक व्यक्तिगत पत्र में लिखा था कि दैवी सहायता की अनुभूति उन्हें जीवन में अनेक बार हुई है और यही अनुभूति ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण है। मेरा व्यक्तिगत अनुभव भी यही कह रहा है। अपने जीवन के कतिपय प्रसंगों को लेखनीबद्ध करता हूँ-

एक - पत्नी श्रीमती स्वदेश दोनों छोटे बच्चों, मनीषा व अमित को लेकर पठानकोट बस स्टैण्ड पर खड़ी थी। बस आ गई थी और धक्का मुक्की में लोग अपना सामान बस पर चढ़ा रहे थे। मै भी भरी हुई बड़ी वी०आई०पी० की अटैची लेकर चढ़ गया। जब अंतिम सीढ़ी पर पहुँचा तो अटैची वाला हाथ हवा में लहरा गया और मैं मय अटैची के नीचे गिरा। मुझे बिल्कुल चोट नही आई। पहला विचार यही आया कि यदि गलत एंगल से गिरता और दुर्घटनाग्रस्त हो जाता तो पत्नी बच्चों को कैसे संभालती और कैसे मुझे? क्या इसे ईश्वरीय सहायता के अतिरिक्त, कुछ कहा जा सकता है?

दो - भानजे ज्योति के साथ उसकी स्टेण्डर्ड गाड़ी (बहुत छोटी) में ग्वालियर से मण्डी हिमाचल जा रहे थे। गाड़ी अच्छी स्पीड पर दौड़ रही थी, होटल पास में ही था कि ज्योति को स्टीरियो में कैसेट चेन्ज करने के लिये झुकना पड़ा। वह झुका और मुझे पेड़ों की हरियाली दिखाई देने लगी। मैं चीख उठा - ज्योति, ज्योति और ज्योति ने जो स्टीयरिंग काटा तो गाड़ी हाइवे पार कर नीचे झाड़ियों में रेत में घुस गई। पत्नी पिछली सीट पर थी और भैया अभी गर्भ में ही था। किसी को कोई चोट नही आई। दुर्घटना का असर आज भी गहरा है।

तीन - ११ फरवरी १४ को ब्रेन हेमरेज का पहला अटैक हुआ। तीन दिन आई.सी.यू. में रखने के बाद डॉक्टरों का निर्णय हुआ कि रक्त का थक्का घुल गया है और मुझे अस्पताल से छुट्टी दे दी गई। २३ को फिर तबियत बिगड़ने लगी। दोपहर का खाना ४ बजे खाया। घुटने मोड़कर, बाहर की तरफ पैर निकाल कर लेटा रहा। ११ बजे तक पत्नी श्रीमती स्वदेश ने दो-तीन बार खाना खाने के लिये कहा तो मना कर दिया। फिर हाँ, हूँ के अलावा कोई बात नहीं और धीरे धीरे अचेतावस्था में चला गया। रात २.३० बजे पत्नी समीपस्थ भानजे को बुला लाई। यही निर्णय हुआ कि सुबह अस्पताल ले चलेंगे।

सुबह पूर्ण बेहोशी की स्थिति में परिवार ने अस्पताल (प्राईवेट) पहुँचाया। डॉक्टरों को बुलाया

गया। डॉक्टरों की राय थी की ब्रेनहेमरेज फिर हो गया है। आवश्यक जाँचों के पश्चात तत्काल ऑपरेशन कराने की सलाह दी गई। पत्नी ने तत्काल कहा कि आप ऑपरेशन की तैयारी कीजिये। आवश्यक धन मैं काउण्टर पर जमा करा रही हूँ। सब तैयारी में शाम सात बज गये। सात बजे प्रारंभ हुआ ऑपरेशन साढ़े आठ बजे समाप्त हुआ। दूसरे दिन २४ घण्टे के बाद होश आया। दोनों हाथ पलंग से बंधे थे। दस दिन बाद घर आया। एक माह तक घर के बाहर जाने की इजाजत भी नही थी। टायलेट जाने के लिये भी पत्नी पीछे पीछे चलती थी। डेढ़ माह के बाद मस्तिष्क की धुंध साफ होने लगी। मन में बार बार यही विचार उठता था कि पत्नी से पूछूँ कि रात १ बजे से शाम ८ बजे तक, ऑपरेशन प्रारंभ होने तक, तुम्हारी मनःस्थिति क्या रही। पर ताजा घाव कुरेदने का मन नहीं हुआ, हिम्मत नहीं हुई, मन का यह संघर्ष चल ही रहा था कि .... अप्रैल २०१४, को वेदमर्मज्ञ पं० शिवनारायण उपाध्याय जी (कोटा) का पत्र मिला। उस पत्र में पण्डितजी ने दुःख प्रकट किया कि जब आपकी पत्नी मर्मान्तक पीड़ा झेल रही थीं तो उन्होंने हमें (पं०जी को) याद क्यों नही किया। मुझे अपनी बात करने का मौका मिल गया। मैने पत्र पढ़कर सुना दिया और पूछा कि जानना चाहता हूँ कि तुम्हारी मानसिक स्थिति कैसी थी ? २० घण्टे से निश्चेत अवस्था में पड़ा हुआ देखकर क्या विचार आ जा रहे थे। पत्नी ने बिना विलम्ब किये तत्काल कहा कि मुझे ईश्वर का पूरा भरोसा था कि आप बिल्कुल ठीक हो जायेंगे। दूसरे मुझे डॉ० उदेनिया, न्यूरोफिजिशियन जो मेरे कार्यालय सहयोगी के सुपुत्र हैं, उन पर भी पूरा भरोसा था कि इलाज में वह कोई कसर नहीं छोड़ेंगे। दोनों भरोसे में खरे निकले और आप ठीक हैं।

सवाल यह उठता है कि श्रीमती जी की वैदिक ईश्वर में इतनी प्रबल, दृढ़ आस्था न होती तो वह टोने-टोटके, गंडे-ताबीज, साधु-फकीर, मन्नते, पचास चक्करों में पड़कर, रो-रोकर बुरा हाल कर देती। ऑपरेशन सायं ७.०० बजे प्रारंभ हआ। सबकी वाणी मौन हो गई । पत्नी ने इसे सुअवसर समझ कर संध्या कर ली। परिवार व बाहर के सभी परिचित लोग उसके धैर्य, मस्तिष्क पर पूर्ण नियंत्रण रख कर, सभी आवश्यक काम व व्यवस्था का संचालन स्वयं करते हुए देख कर आश्चर्य चकित थे। आज भी हैं। मैं अपनी बात नही करता पर श्रीमती की बात सुन कर, समझ कर आश्चर्य चकित होता हूँ। स्वयं से ही पूछता हूँ कि क्या मैं ऐसा कर पाता? ईश्वर के प्रति एकान्त निष्ठा व कर्त्तव्य के प्रति जागरूकता ईश्वर की कृपा का ही फल है, ऐसा मेरा मानना है और यही पत्नी श्रीमती स्वदेश ने करके दिखलाया। कर्त्तव्य-कर्म, पूर्ण-विचार के बाद स्थिर करना यदि ईश्वर में आस्था का परिणाम नहीं है तो और क्या है?

अन्य घटनाओं से लेख का कलेवर नही बढ़ाना चाहता । महर्षि मानते है कि ईश्वर सहायता करता है पर कब? जब पूर्ण पुरूषार्थ करने पर भी किसी कठिन समस्या का निराकरण न हो रहा है, तभी प्रार्थना करने पर वह अवश्यमेव सहायता करता है। कोई हल सुझाता है। किसी मित्र, सगे-संबंधित को भेज देता है। कोई न कोई ऐसा बाना बना देता है, जिसमे आपका काम बन जाए और काम न होने वाला हो तो संतोष प्रदान करता है। बस जरूरत है धैर्य की और विश्वास की। उस पर विश्वास की कमी ही हमें इधर-उधर भटकाती है। और यही कमजोरी अमरनाथ, तिरूपति बालाजी, सोमनाथ जी व वैष्णोदेवी व शिरड़ी आदि अन्य अनेक तीर्थों पर भटकन का कारण है। मैं इसे आस्था की पूर्ति हेतु यात्रा नही मान सकूँगा क्योंकि आस्था भटकाती नही, आश्रय देती है।

२२, नगर निगम क्वार्टर्स
जीवाजीगंज, लश्कर, ग्वालियर
पिन-४७४००१

दूरभाष : ०७५१-२४२५९३१
मो: ९३०३४४८४४१

महर्षि का पत्र साहित्य ही हिन्दी का प्रथम पत्र साहित्य

–डा० अशोक आर्य

मानव का जीवन आज अत्यन्त व्यस्त जीवन हो गया है। वह कम समय में अधिक कार्य चाहता है। इसका कारण है कि आज का जीवन पहले से कहीं अधिक व्यस्त हो गया है। इस वैज्ञानिक युग में समय का अभाव निरन्तर बनता ही चला जा रहा है। वैसे भी आज को कोई भी व्यक्ति अपनी सब आवश्यकताओं को एक ही स्थान पर रहते हुए पूर्ण नहीं कर सकता तथा न ही इस हेतु वह विभिन्न स्थानों पर जा सकता है। इसका कारण है समय का अभाव। यदि वह ऐसा करता है तो वह इधर उधर भागने में ही लगा रहेगा तथा जीवन व्यापार उसका पीछे ही छूट जायेगा। समय का अभाव व कार्य व्यस्तता के कारण बने इस अभाव को दूर करने के लिये उसने जिन साधनों का आश्रय लिया उन में पत्र भी एक है। कालावधि के पश्चात इन पत्रों के स्थायी प्रभाव को समझा गया तथा इन पत्रों के संकलन की आवश्यकता अनुभव की गयी। अतः यह पत्र भी संकलित कर पुस्तक रूप में लाये गये। पत्रों का यह रूप ही हमारे प्रस्तुत लेख का विषय है। आइये इस पर विचार करे।

पत्रों का महत्व - मानवीय जीवन में पत्रों का विशेष महत्व होता है। पत्र लेखन मनुष्य की एक सहज व स्वाभाविक तथा अनिवार्य क्रिया है। अपने दूरवर्ती मित्रों, सम्बन्धियों, व्यापार्य व अन्य अनेक कारणों से अनिवार्य रूप से मनुष्य को पत्राचार करना ही पड़ता है। जब किसी व्यक्ति विशेष के पत्र न केवल उसकी गरिमा को ही प्रभावित करते है अपितु यह मानव समाज को भी प्रभावित करते हैं, तो इनका महत्व अत्यधिक बढ़ जाता है। इनसे व्यक्तिगत सम्बन्धों की नींव सुदृढ़ होती है। आत्मीयजनों से पत्र व्यवहार द्वारा अपूर्व आनन्द मिलता है। इनसे जीवन का सूनापन दूर होता है।

पं० वियोगि हरि के अनुसार "पत्रों में अजेय शक्ति होती है, यदि हम अपना हृदय उनमें उड़ैल सकें। जितने भी भाई मुझे मिलें, वो सभी पत्रों की देन हैं। गुरूदेव रवीन्द्रनाथ के चरणों की धूलि भी पत्रों की बदौलत मिली।"

वास्तव में पत्रों में व्यक्ति का व्यक्तित्व छुपा है. जिससे उसकी मानसिकता, भाषा, शैली, सोचने व कार्य करने का ढंग, धार्मिक आस्थाएँ, राजनैतिक सोच, मानवीय चेतना आदि सभी कुछ मिलता है। प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक जीवन में आए निखार का प्रमुख आधार भी लेखक का पत्राचार ही है। अतः पत्र लेखन मानव जीवन की चेतना में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

●

पत्र और महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती एक महान समाज सुधारक थे। कार्यक्षेत्र में उतरने से पूर्व महर्षि ने सम्पूर्ण भारतीयों का मानो एक प्रकार से नाड़ी परीक्षण किया। समाज में जड़ जमाए अनेक रोगों, यथा अन्ध विश्वास, रूढ़ियों, कुरीतियों, नारी की दयनीय अवस्था, स्त्री शिक्षा, छूआछूत, गौवध, वेद विमुखता, सरीखे गम्भीर रोगों को खोजकर कार्यक्षेत्र में पर्दापण करते ही इन सब रोगों का नाश करने के लिए भीषण शंखनाद किया। एतदर्थ व्याख्यानों से ही नहीं अनेक शास्त्रार्थों द्वारा भी अन्धकार के पर्दे मानव मात्र की आंखों से उठाने का प्रयास किया।

जब भी कोई व्यक्ति बहाव के विपरीत चलने का प्रयास करता है तो समग्र संसार उसे जानने, उसे समझने व उसे देखने के लिए उद्वेलित हो उठता है। महर्षि दयानन्द के क्रान्तिकारी विचारों ने जनमानस के हृदयों पर कुछ ऐसा ही प्रभाव डाला। सब तरफ सब में एक ही जिज्ञासा थी कि यह अनूठा जादूगर कौन है? यह कैसा है ? आदि आदि, किन्तु सभी लोग उन तक पहुंच नही सकते थे। इसका समाधान उन्होंने पत्रों के माध्यम से पाया। अतः अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए उन्होंने पत्रों द्वारा अपनी शंकाएं स्वामी जी तक भेजनी आरम्भ की। इन पत्रों के उत्तर स्वामी जी से प्राप्त कर यह लोग अपने को धन्य मानने लगे।

अनेक बार स्वामी जी के भक्त भी उन्हें पत्रों से भविष्य की योजनाओं व अपनी जिज्ञासाओं का समाधान करते थे। अनेक बार तो स्वामी जी स्वयं भी अपने भक्तों को पत्रों के माध्यम से कई आदेश भेजा करते थे। आर्य समाज की स्थापना के पश्चात् स्वामी जी का पत्र लेखन अत्यधिक बढ़ गया। ज्यों ज्यों आर्य समाजों का विस्तार होता चला गया त्यों त्यों स्वामी जी को पत्राचार भी अधिक करना पड़ा। इस प्रकार स्वामी जी के पत्रों की संख्या हजारों में चली गई।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र साहित्य

महर्षि जी ने अपने जीवन काल में जो पत्र व्यवहार किया , उनके देहावसान के पश्चात उनके एक एक शब्द को सम्भालने की दृष्टि से महात्मा मुन्शी राम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने स्वामी जी के पत्रों को ढूंढ़ कर एकत्र किया तथा इन्हें सम्पादित कर **''ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार भाग १''** शीर्षक के अन्तर्गत इसे प्रकाशित किया।

महर्षि दयानन्द का एक एक शब्द सुरक्षित हो, इस संकल्प के साथ उपर्युक्त संकलन के प्रकाशन के कुछ वर्ष पश्चात पं० भगवद्दत जी ने **''ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन''** शीर्षक के अन्तर्गत इसे चार भागों में पूर्ण किया।

तत्पश्चात पं० चमूपति के सम्पादकत्व में गुरूकुल काँगडी विश्वविद्यालय ने एक अन्य पत्र संग्रह **''ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार भाग- २''** प्रकाशित किया। इसमें १९५५ तक प्रकाशित प्रायः सभी पत्र समाहित हैं।

पत्रों से लक्षित महर्षि का व्यक्तित्व

महर्षि दयानंद सरस्वती के समय को भारतीय इतिहास में पुनर्जागरण काल के रूप में जाना जाता है। इसमें महर्षि की अभूतपूर्व प्रतिभा, पाण्डित्य, निर्भीकता, व्यक्तित्व आदि के कारण देश भर में विशेष रूप से उत्तर भारत में वैदिकधर्म का डंका बजने लगा। महर्षि के पत्रों से उनके व्यक्तित्व की झलक इस प्रकार मिलती है:

जीवनी सूत्र

अनेक महापुरूष अपने पत्रों में अपने जीवन का क्रमबद्ध उल्लेख कर देते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ऐसा करने का प्रयास नहीं किया, तो भी पत्रों से कुछ जीवनी सम्बन्धी संकेत या सूत्र मिल जाते हैं। स्वामी जी द्वारा पं.कालूराम को लिखे पत्र में आर्य समाज की प्रगति के उल्लेख से कुछ जीवन सूत्र इस प्रकार प्राप्त होता है ...यथा.... ''रावलपिण्डी में आर्यसमाज हो गया है। इस स्थान (जेहलम) में भी होने की आशा है। पंजाब में बहुत ठिकाने समाज बन गए हैं। वेद धर्म की बड़ी उन्नति है।''

इस प्रकार स्वामी जी के पत्रों में न केवल अनेक स्थानों की यात्रा का वर्णन है अपितु शास्त्रार्थों व आर्य समाज की प्रगति सम्बन्धी उल्लेख भी हैं।

चारित्रिक विशेषताएं :

स्वामी जी के चरित्र के कुछ ऐसे पहलू हैं, जिनका ज्ञान हमें केवल पत्रों से ही होता है। यथाः

हिन्दी अनुराग:

मातृभाषा गुजराती तथा संस्कृत के अनुरागी होते हुए भी हिन्दी के प्रति स्वामी जी का असीम अनुराग था। वह इसे आर्यभाषा कहते थे। लाहौर के जवाहर सिंह जी के पत्र का स्वामी जी ने इन शब्दों में उत्तर दिया....''जो तुमने इतनी बड़ी चिट्ठी आर्यभाषा में लिखी, यही हमने तुम्हारी शुद्धि जानी।''

हिन्दी से अत्यधिक अनुराग होने के कारण इसे राजभाषा का स्थान दिलाने हेतु हण्टर कमीशन के पास भारी मात्रा में स्मरण पत्र भिजवाये। तभी तो विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं ''हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार से आर्य समाज का योगदान सर्वविदित है। आर्य समाज के संचालक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आज से एक शताब्दी पूर्व अपना लेख हिन्दी भाषा में आरम्भ किया था। स्वामी जी हिन्दी भाषा को आर्यभाषा कह कर पुकारते थे।''

निर्भीक व स्पष्टवादी :

यह दोनों स्वामी जी की विशेषताएं थीं। वह सत्य कहने में किसी से भी न डरते थे । तभी तो १ सितम्बर १८८३ को जोधपुर नरेश महाराज जसवन्त सिंह के नाम पत्र में उनके दोषों का भी वर्णन इस प्रकार किया ''एक वैश्या, जो कि नन्ही कहलाती है, उससे प्रेम, उसका अधिक संग और अनेक पत्नियों से न्यून प्रेम रखना आप जैसा महाराज को सर्वथा अयोग्य है। चाहे इस स्पष्टवादिता के लिए प्राण भी गंवाने पड़े।

व्यवहार कुशलता :

स्वामी जी के पत्रों से यह भी पता चलता है कि वह एक कुशल संगठक, प्रबन्धक व व्यवस्थापक भी थे। पूरा हिसाब किताब लेने प्राप्तिकर्त्ता से हस्ताक्षर लेने तथा कर्मचारियों के सुयोग्य पारखी थे। स्वामी ईशानन्द जी को लिखे पत्र से यह स्पष्ट होता है कि ... जो आपने अध्ययन किया है, उसी में वार्तालाप करें और कह देवें कि मैं कुछ वेद शास्त्र नहीं पढ़ा, किन्तु मैं तो आर्यावर्त देश का छोटा विद्यार्थी हूँ और कोई बात का काम ऐसा न हो कि जिससे अपने देश का ह्रास होवे....''

दृष्टिकोण

वेदों के अपूर्व प्रचारक महर्षि दयानन्द का मुख्य नारा था ''वेदों की ओर लौटो'' उनके सरल और निष्कपट व्यक्तित्व के अनेक उदाहरण मिलते हैं। अनूठी पत्र शैली के धनी थे। पत्र लेखन में

स्वस्ति, श्री के स्थान पर सम्बोधन में व्यक्ति के नाम को तथा अभिवादन आनन्दित रहो ही होता था। अनौपचारिक, सरलता, स्पष्टता, संक्षिप्तता आदि अनेक पत्रों की विशेषताएं हैं। स्वामी जी ने अपने पत्रों द्वारा अनेक लोगों को प्रेरित व प्रोत्साहित करते हुए हिन्दू संस्कृति तथा देश हितार्थ भरसक प्रयास किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के पत्र साहित्य का हिन्दी साहित्य में स्थान :

पत्र लेखन की संस्कृत साहित्य में अति प्राचीन परम्परा चली आती है। राजकीय पत्र ही प्रायः पत्रों के रूप में जाने जाते थे। मेघदूत व कालीदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम में ''मदन लेख'' नाम से प्रेम पत्र मिलते हैं। महाकवि बाण की कादम्बरी भी इस प्रकार की अन्य कृति है। पक्षी, राहगीर, घुड़सवार व विप्रों द्वारा भी पत्र भेजे जाते रहे हैं। विवाहों का निर्णय नाईयों व ब्राह्मणों द्वारा आज भी पत्र भेजने की परम्परा प्रचलित है। मध्य युग में सर्वप्रथम डाकियो द्वारा १५८६ में शेरशाह सूरी ने डाक भेजने की प्रथा आरम्भ की। यही डाक सेवा आज मानव सभ्यता का अभिन्न अंग बन गई है।

हिन्दी पत्र लेखन परम्परा में हमें सर्वप्रथम रासो ग्रन्थों में सन्देश रासक में मिलती है। पृथ्वीराज रासो के 'पद्मावती समय' नामक सर्ग से भी मिलता है। जायसी का ''नागमती वर्णन'' से भी पत्रों का उल्लेख मिलता है। तुलसीदास की विनय पत्रिका भी हिन्दी पत्र साहित्य का एक उदाहरण है। सूरदास का भ्रमर गीत भी प्रेम पत्र का सुन्दर चित्रण देता है। राणा से दुःखी मीरा ने भी तुलसीदास को पत्र लिखा था, किन्तु यह सभी पत्र काव्यमयी थे तथा इन्हें संकलन रूप में भी नही पाया जाता।

आज आधुनिक नवजागरण के युग को हिन्दी के गद्य युग के नाम से माना जाता है। इस युग में सर्वाधिक पत्र व्यवहार महर्षि दयानंद सरस्वती ने किया। हिन्दी साहित्य में गद्यात्मक स्वरूप के अन्तर्गत जो पत्र साहित्य के रूप में सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ, उसको महात्मा मुन्शीराम ने संकलन कर सन १९१० ईस्वी में **''ऋषि दयानंद के पत्र व्यवहार, भाग १''** के अन्तर्गत प्रकाशित किया।

इससे स्पष्ट होता है कि तथ्यात्मक साहित्य की उपेक्षित विधाओं की ओर आर्य समाजी लेखकों ने विशेष ध्यान दिया। अतः यहीं से पत्र संग्रहों के प्रकाशन आरम्भ हुआ। डा. चन्द्रभानु सोनवणे के शब्दों में ''यही संकलन जो कि गुरूकुल कांगडी से प्रकाशित हुआ, हिन्दी साहित्य के प्रमुख ग्रन्थों में प्रथम ग्रन्थ स्वरूप अभी भी चर्चा मिलती है। डा. हरबन्स लाल शर्मा ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी इस मत को स्वीकार किया है। डा. नगेन्द्र ने भी ''हिन्दी साहित्य'' में इसे प्रथम ग्रन्थ स्वीकार कर १९०६ ईस्वी में प्रकाशित माना है।

इतना ही नहीं, इसके पश्चात पं. भगवद्दत्त जी ने ऋषि दयानंद के पत्र और विज्ञापन चार भागों में सम्पादित किया, जिसे रामलाल कपूर ट्रस्ट ने प्रकाशित किया। हिन्दी साहित्य का यह दूसरा पत्र संग्रह भी महर्षि दयानंद सरस्वती का ही है। तत्पश्चात १९२२ में स्वामी विवेकानन्द के पत्र प्रकाशित हुए।

इन सब को देखते हुए हम कह सकते हैं कि सन् १९२२ ईस्वी तक निरन्तर पत्र साहित्य के क्षेत्र में आर्य समाज का एकछत्र आधिपत्य रहा। तथा केवल महर्षि दयानन्द सरस्वती के पत्रों के संकलन ही उपलब्ध थे। इस पर हमें गर्व है।

अशोक आर्य
१०४, शिप्रा अपार्टमेंट, कौशाम्बी
२०१०१०, गाजियाबाद
दूरभाषः ०९७१८५८०६८

तीन हजार वर्ष पूर्व मूर्तियों की पूजा नहीं होती थी

श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

हम आर्य लोग मूर्ति पूजा निषेध के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के युक्तिपूर्ण लेख लिखा करते हैं और आर्य पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित होते रहते हैं। किन्तु आर्य समाज के अलावा और कोई जो मूर्ति पूजा करते है वे इस विषय को देखते ही नहीं। मूर्तिपूजा कम कहाँ से होगा प्रतिवर्ष बढ़ता ही जा रहा है।

यदि आस्था चैनल पर सभी आर्य प्रतिनिधि सभाओं के सहयोग से केवल एक या आधा घन्टा के लिए वैदिक धर्म एवं मूर्ति पूजा के स्थान पर यज्ञ करने के लिये प्रचार किया जाता और समझाया जाता तो यह आर्य समाज के लिये बहुत उत्तम कार्य होता। आज सभी मत वाले आस्था आदि के माध्यम से अपने-अपने सिद्धान्त का वेद विरुद्ध प्रचार करते रहते हैं, इसीलिये तो न मूर्ति पूजा में कमी आई है और न योगेश्वर श्रीकृष्ण चरित्र के विरुद्ध रासलीला, राधे कृष्णा के प्रेम-प्रणय में कोई कमी हुई है।

सब लोग पौराणिक के संस्कार जाल में फँसे हुए है, जैसे ऋषि दयानन्द के समय वेद विरुद्ध कुसंस्कार फैला हुआ था वैसे ही आज उससे कही अधिक फैल गया है।

ईसाई, इस्लाम, जैनी और अन्य राधे कृष्णा वालों के अतिरंजन हर शहर, ग्राम में जा-जा कर अपने-अपने मत का प्रचार और दीक्षित करते रहते हैं और पौराणिक ब्राह्मण लोगों को तो प्रचार करने की कोई आवश्यकता ही नहीं होती क्योंकि उनके वंशज तो हर ग्राम और शहरों में मौजूद रहते है, और उन्हीं से लोग सारे संस्कार कार्य करवाते रहते हैं। आर्य समाज तो केवल बड़े-बड़े शहरों तक ही सीमित है।

पहले कतिपय आर्य लोग बाबा रामदेव पर विश्वास करते थे कि योग के साथ ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों का भी वे जहाँ-जहाँ जाते है प्रचार कर सकते हैं, किन्तु ऋषि के भक्त होते हुए वे भी उनके स्वप्नों को साकार नहीं किये। केवल पतंजलि के नाम पर दानी दाताओं से धन संचय करने में लगे रहे। अब तो वे २०० करोड़ से अधिक के मालिक बन गये है, इसके अलावा वे एक बहुत बड़े व्यापारी में भी गिने जाते है, और व्यापारी जन किसी मज़हब की समालोचना नही करते किन्तु वे यदि चाहते तो वे अपने आस्था चैनल के शिविर में आध घंटा के लिये किसी जानकार विद्वान् से वैदिक धर्म का प्रचार भी करवा सकते थे। पर अब तो वे राजनीति भी करने लगे हैं । जो बाबा ऋषि दयानन्द को अपना गुरु मानते थे, वे ही अब प्रतीकोपासना के समर्थक हो गये है. वे कुरानी, पुराणी आदि सभी को लेकर चल रहे हैं, वह इसलिए कि उन सबके सहयोग से एक ऐसे भ्रष्टाचार रहित व्यक्ति को वोट में विजय दिलाना चाहते है कि जिससे देश तरक्की कर सके और छिपाये हुए काले धन का पर्दाफांस हो सके, तथा महंगाई दूर हो सके। इसके अलावा भ्रष्टाचार और काले धन के विरोध में यदि कोई अनशन करता है तो सन २०११ जैसा दिल्ली पुलिस (जलियाँवाला बाग की तरह) पुनः अत्याचार न कर सके। और प्रशासन ऐसा हो कि कोई बलात्कारी बलात्कार न कर सके।

एक तरफ से उनका भी राजनीति के सम्बन्ध में विचार अच्छा ही है। परन्तु उनके द्वारा आर्य समाज की तरक्की होगी ऐसी आशा नही की जा सकती। अब तो वे अपने हाथ में कलेवा - रक्षक सूता बाँधने

लगे है, और दानी दाताओं को रूद्राक्ष की माला पहनाने लगे है। यही तक नहीं वे प्रतीकोपासना का भी समर्थन करने लगे हैं।

श्री रामदेवजी ने लिखा है कि हमारे ग्रन्थों में प्रतीकों को मान्यता मिली है और मन आदि किसी भी वस्तु को ईश्वर मानकर उनकी उपासना करने का निर्देश किया है। मगर ऋषियों का वास्तविक अभिप्राय इससे भिन्न ही है। इस रहस्य का उदघाटन करते हुए ऋषि व्यास जी ने प्रथम तो पूर्व उद्धृत सूत्र **''न प्रतीके न हि स:''** (वेदान्त दर्शन,४,१,४) से यह कहा कि ऐसी किसी जड़ प्रतीक में परमात्मा - बुद्धि नहीं करनी चाहिये, ऐसा करना व्यर्थ है। क्योंकि वह प्रतीक रूप भौतिकत्व परमात्मा नहीं, दोनों में प्रकाश और अन्धकार के समान भेद है। परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप और वह आत्मा से भी सूक्ष्म परमात्मा है, जबकि प्रतीक जड़ प्राकृतिक एवं साकार पदार्थ होता है। मन भी पदार्थ होने से परिवर्तनशील = चंचल होता है, जब तक उसे योगाभ्यास की बुद्धि द्वारा रोका नहीं जाता तब तक उस अपरिवर्तनशील निरवयव आत्मा के माध्यम से परमात्मा के प्रकाश म आनन्द का बोध नहीं होता।

स्वयं मूर्तिपूजक एवं प्रतिमा पूजा के अनन्य पक्षधर व पोषक होते हुए भी स्वामी विवेकानन्द ने महर्षि दयानन्द द्वारा सत्यार्थ प्रकाश में उद्घाटित इस तथ्य से अपनी सम्मति प्रकट की है, कि प्रतिमा पूजा वैदिक या सनातन नहीं है अपितु अर्वाचींन है। उसका प्रचलन जैन-बौद्ध काल से ही हुआ है। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है- ''सगुण ईश्वर के विरुद्ध बुद्ध के लगातार तर्क करने के फलस्वरूप भारत में प्रतिमा पूजा का सूत्रपात हुआ। वैदिक युग में प्रतिमा का अस्तित्व नहीं था। उस समय लोगों की यही धारणा थी कि ईश्वर सर्वत्र विराजमान है। किन्तु बुद्ध के प्रचार के कारण हम जगत् स्रष्टा एवं अपने सत्य स्वरूप ईश्वर को खो बैठे और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप प्रतिमा पूजा की उत्पत्ति हुई। लोगों ने बुद्ध की मूर्ति गढ़कर पूजा प्रारम्भ किया। ईसामसीह के सम्बन्ध में भी वैसा ही हुआ है । काठ-पत्थर की पूजा से लेकर ईसा और बुद्ध की पूजा तक सभी प्रतिमा पूजा है। (देववाणी, रामकृष्ण मठ नागपुर से प्रकाशित, सप्तम संस्करण पृष्ठ-७३)

चित्र या मूर्ति उन्हीं लोगों की घर मे रखनी चाहिये जो अपने पूर्वज एवं गुरुजन हो। ईश्वर की मूर्ति कभी नही बन सकती, और जो ईश्वरीय शक्तियों की देवी देवताओं के नाम से मूर्तियां बनाई जाती है वे काल्पनिक है। आज विज्ञान के युग में भी लोग उन्हीं मूर्तियों को दु:खहर्त्ता, धनदाता और रक्षक जानकर विश्वास करते हैं। भला मिट्टी की टिकिया से शिर का दर्द थोड़े ही ठीक होता है, उसके लिये अष्टांग योग की गोली खानी होगी, तभी दर्द ठीक होगा- और आनन्द का भी अनुभव होगा उदाहरण के लिये हमारे पड़ोस में एक व्यक्ति को शिर दर्द होता रहता था, उसने मुझे बताया कि जब से मैं अनुलोम विलोम (नाड़ीशोधन) १५ मिनट तक करने लगा तभी से मेरा शिर दर्द नहीं होता। इसलिये मूर्तिपूजा के स्थान पर नियमित नित्य पूजा योगाभ्यास का करते रहें इससे शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक लाभ होता है।

जिस प्रकार अष्टांग योग से आत्मा और परमात्मा को जाना जाता है उसी प्रकार सामग्रियो से (हवन) यज्ञ करने से प्राण वायु का शोधन होता है, जिससे अनेक रोगों से आस पास के लोग भी बच सकते हैं।

श्री गणेश, दुर्गा, काली आदि की जो वर्ष में एकबार मूर्तियां बनवाकर पूजी जाती है, उनसे केवल लोगों में आस्तिकता और मनोरंजन के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं होता। हाँ शिल्पियों और पण्डाल बनाने वालों को कुछ कमाई अवश्य हो जाती है।

जो लोग देवी काली और दुर्गा के स्थान पर बकरे की बलि देते हैं वे धर्म नहीं अधर्म करते हैं, क्योंकि देवी-देवता, दिव्य गुण युक्त होते है, वे सब शक्तियाँ रक्षक होती हैं, जो रक्षक होती है वे भला किसी प्राणी की बलि क्यों स्वीकार करेगी? क्या कभी देवी देवता के समान, माता-पिता, बकरे की बलि से प्रसन्न हो सकते हैं ? अरे वे तो अपने सन्तान से केवल श्रद्धा और प्रेम के प्यासे होते हैं। अतः जो हवन दैनिक अथवा सप्ताह में एक भी करते है उन पर दैवी शक्तियों की कृपा बराबर बनी रहती है।

आजकल लोग इतने कुसंस्कारी हो गये हैं कि जब बड़े-बड़े सेठ लोगों का मन्नत पूर्ण हो जाता है तब उन प्रतिमाओं को सोने की चादरों से ढक देते है। यदि ऐसी बात है तो उन प्रसिद्ध सोने से लदी हुई मूर्तियो को मन्दिरों में बन्द करके ताला क्यों लगाया जाता है? व वे मूर्तियाँ अपने धनों की रक्षा नही कर सकती? जो अपनी सुरक्षा नहीं कर सकती वे कैसे दूसरों के दुःखों को दूर कर सकती है?

हम पहले ही लिख चुके है कि मूर्तियों का आविष्कार बौद्ध और जैन काल से ही आरम्भ हुआ था। उसके पश्चात १८ पुराणों के रचयिता अज्ञात ब्राह्मणों ने देवी-देवता एवं ऋषियों के नाम से मूर्तियां को बनवाना आरम्भ कर दिया और तभी से उन सबकी पूजापाठ लोगों से करवाने लगे। तात्पर्य यह कि उसी समय से यह प्रतिमा पूजन का संस्कार ऐसा जड़ पकड़ लिया कि उनके सन्ततियों से इस मूर्ति पूजा के विश्वास से कोई अलग नहीं कर सकता, पर यदि ऋषि की जीवनी, और उनके सत्यार्थ प्रकाश का स्वाध्याय किया जाय तभी मूर्ति पूजा के सम्बन्ध में ज्ञान हो सकता है। मनुष्य का अटल प्रेम और विश्वास ही कामनाओ को पूर्ण करने में सहायक होते है ।

मु० पो० मुरारई,-जिला -वीरभूम
(पं०बंगाल) ७३१२१९,
मो० -८१५८०७८०११

भारतीय आर्य भजनोपदेश परिषद का वार्षिक सम्मेलन प्रशिक्षण शिविर एवं अभिनन्दन समारोह

दिनांक १० से १२ अक्टूबर २०१४ शुक्रवार, शनिवार, रविवार स्थान - महर्षि दयानन्द मार्ग - नवलखा महल, गुलाब बाग - उदयपुर भारतीय आर्य भजनोपदेशक परिषद का सम्मेलन (राजस्थान) प्रशिक्षण शिविर एवं अभिनन्दन समारोह में आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वान् भजनोपदेशक पं० अभयराम शर्मा ''दयानन्दी'' सहारनपुर उत्तर प्रदेश एवं भजनलाल आर्य जी फरीदाबाद का परिषद द्वारा अभिनन्दन तथा गोष्ठी का आयोजन एवं सम्पूर्ण भारतवर्ष से आये विद्वानों के प्रवचन एवं भजनोपदेश के भजन होंगे । इस मौके पर आप सब आर्य भजनोपदेशक आर्य सज्जन सादर आमंत्रित है ।

डॉ० कैलाश ''कर्मठ'', कलकत्ता

नर तन में पशु-वर्तन

-देवनारायण भारद्वाज

नरतन आनन्द उजरिया है।
यह तेरी इन्द्र नगरिया है।।

मनुज देह में तुमको देखा। किन्तु देह में मनुज न देखा।
देह मनुज को बनी दनुज की, बहुत दिनों में परखी रेखा।
असुरों की तनी चदरिया है। यह तेरी इन्द्र नगरिया है।।१।।
दिवस प्रकाश न तुझको भाता। निशा तिमिर ही सदा सुहाता।
स्वार्थ साध में होकर अन्धे, मुख उलूक सा खुलता जाता।
होती उजाड़, फुलवरिया है। यह तेरी इन्द्र नगरिया है।।२।।
स्वार्थ तुम्हारा सध न पाता। क्रोध बहुत तब तुमको आता।
तोड़,फोड़, संहारक करते, रूप भयंकर तब बन जाता।
घुस आता यहाँ भेड़िया है। यह तेरी इन्द्र नगरिया है।।३।।
द्रोह ईर्ष्या सहित अकड़ते। अपनों से ही तुम लड़ पड़ते।
जो तुमको जूठन खिलवाता, उसके आगे नाक रगड़ते।
बन जाती श्वान डगरिया है। यह तेरी इन्द्र नगरिया है।।४।।
काम वासना तुम्हें सताती। बुद्धि तुम्हारी मारी जाती।
अतिव्यभिचारी चाल तुम्हारी, चिड़ा-चिड़ी को भी शरमाती।
हर अंग अलग अँगरिया है। यह तेरी इन्द्र नगरिया है।।५।।
अतिशय ऊँची तेरी उड़ान। चञ्चुल पंजे सब शक्तिमान।
प्रिय जन पक्षी के तुम भक्षी, अति गरूड़ तुल्य तुमको गुमान।
गर्जित अभिमान बदरिया है। यह तेरी इन्द्र नगरिया है।।६।।
दूर दृष्टि तो तुमने पायी। किन्तु भोग पर ही ललचायी।
निज लोभ लाभ हित तुमने, चाल गिद्ध सी सिद्ध बनायी।
शव शोणित उदर गगरिया है। यह तेरी इन्द्र नगरिया है।।७।।
तुम करते निश्चर-पशु वर्तन। क्षण क्षण में स्वभाव परिवर्तन।
एक नहीं यह सभी निशाचर, नर तन में करते नित नर्तन।
तन वरनी बनी बवरिया है। यह तेरी इन्द्र नगरिया है।।८।।
नर नायक हो तुम नरेन्द्र हो। सुख दायक हो तुम सुरेन्द्र हो।
दो मंसल असुरता पशुता को, इन्द्र इन्द्रियों के नृपेन्द्र हो।
संयम की सोम कुठरिया है। यह तेरी इन्द्र नगरिया है।।९।।

'वरेण्यम् अवन्तिका (प्रथमः)
रामघाट मार्ग, अलीगढ़ (उ०प्र०)

●

।। ओ३म् ।।

२७ जून २०१४ **अबुधावी**

समादरणीय श्री युत........

सादर नमस्ते

- ईश्वर कृपयात्र कुशलं तत्रापि भवतु।

- अनेक आर्य सज्जनों के आमन्त्रण पर जून १८.२०१४ को यहां पहुंचा खाड़ी देशों की यह मेरी दूसरी यात्रा है। यहां मैं आर्य परिवारों को सांख्य दर्शन का अध्यापन, ध्यान, प्रवचन, शंका समाधान करता हूँ। जब भी अवकाश मिलता है, आस-पास के देशों में भ्रमणार्थ जाता हूँ । दुबई देश में रहते हुये मैने अबुधावी, शारजाह अजमान, फुजैराह, रस अल खैमाह आदि सात देशों की यात्रा की है। मुझे बहुत कुछ नया ज्ञान विज्ञान, प्रत्यक्ष देखने, सुनने, पढ़ने को मिला, यह मेरी १९ वीं विदेश प्रचार यात्रा है।

- बीसवीं शताब्दी के मध्य तक इन खाड़ी देशो में, खारे समुद्र, रेत के टीलों, गर्म धूल भरी हवाओं के अतिरिक्त कुछ भी नही था। अत्यन्त प्रतिकूल प्राकृतिक विपन्न जलवायु के ये कैसे जीते थे, यह कल्पना भी नहीं की जा सकती है। लेकिन आज वहीं पर अत्याधुनिक तथा विशाल, ५०-८०-१०० मंजिले आकर्षक भवनों को देखते हैं तो बड़ा आश्चर्य होता है कि कहीं स्वप्न तो नहीं देख रहे हैं, कोई जादू तो नहीं है।।। वास्तविकता यह है कि यह सब मन में किसी उद्देश्य को बनाकर उसको पूरा करने हेतु प्रबल भावना, दृढ़ संकल्प, परम पुरूषार्थ तथा घोर तपस्या का परिणाम है।

- मैंने सुना है कि यहां (शेख) राजा, जब अमेरिका, यूरोप आदि देशों की यात्रा करते हुए वहां की भौतिक सुख-सुविधाओं से युक्त, सब प्रकार की उन्नति देखते थे तो उनके मन में यह विचार उत्पन्न होते थे कि क्या मेरे देश में ऐसे भवन, चौड़ी सड़कें, यातायात के साधन, होटल, रिसोर्ट, क्लब, बाग, बगीचे मनोरंजन के साधन, व्यापार मण्डी, सुख-सुविधाएं बनायी जा सकती है। जिनके कारण लोग आकर्षित होकर आवें, रहें?

- बस एक दिन संकल्प कर लिया, योजनाये बनायी गई, अमेरिका, यूरोप, एशिया के देशों से संपर्क किया, मंत्रणा हुई, अनुबन्ध हुए, लोहा, सीमेंट, पत्थर, लकड़ी, इंजीनियर, श्रमिक, आदि जिन जिन साधनों की अपेक्षा थी, प्राप्त किये गये। कार्य प्रारंभ हो गया, शेख के मन में एक ही भावना थी कि कोई भी निर्माण हो, अदभुत, अद्वितीय, आकर्षक होना चाहिए। समुद्र में मीलों तक पत्थर, कंकर, रेत डालकर, पहाड़ बनाकर उन पर आकाश को छूने वाली, ऊँची भव्य इमारतें बनायी गयीं। और सुन्दर नगर बसाया गया।

दूसरी तरफ भूमि में गहरी खाईयां खोदकर समुद्र के पानी को नहरों के रूप में फैला दिया गया। अन्य देशों से जहाजों में उपजाऊ मिट्टी मंगाकर, रेत के मैदानों में बिछाकर, बड़े बड़े उद्यान, खेत, बगीचे, उपवन, वाटिकाएं बना दीं। जहाँ घास का एक तिनका नहीं उगता था वहां पर रंग-बिरंगे, फूल—फल.

घास के मैदान बना दिये। बसों, रेलों, ट्रामों, भण्डारों आदि की समुचित व्यवस्था करके सर्वत्र आवागमन को सरल बना दिया।

- कृत्रिम रूप से बने सभी साधन सुविधाओं से युक्त उत्तम व्यवस्था, कुशल प्रबन्ध, अनुशासन, दण्ड व्यवस्था के कारण विश्व के २०० से भी अधिक देशों के नागरिक यहां अनेक प्रकार के व्यवसायों में लगे हुए हैं। अमीरात के देश विश्व का एक महत्वपूर्ण व्यापारिक एवं पर्यटन का केंद्र बन गया है। इन देशों के मुख्य नगरों में घूमते हैं तो यह भ्रम हो जाता है कि कही हम लंदन, पेरिस, टोक्यों, सिंगापुर में तो नहीं है?

इन देशों के वैभव, सम्पदा, विकास, उन्नति को देखकर, वही प्रश्न मन में उपस्थित होता है कि ये देश अत्यन्त प्रतिकूल वातावरण, जलवायु तथा विपन्नता के होते हुये, कुछ ही वर्षों में देश को स्वर्ग के समान सम्पन्न सुन्दर बना सकते हैं तो हम क्यों नहीं? जहां पर हर प्रकार की प्राकृतिक सम्पदा, साधन, अनुकूलता हो। जिस देश में शिल्प, कला, शिक्षा, चिकित्सा, विज्ञान, संस्कृति, सभ्यता, खान-पान, वेशभूषा, धर्म, आचार, विचार व्यवहार, सिद्धान्त तथा श्रेष्ठ गौरवमयी आदर्श परम्परायें हजारों-लाखों वर्षों से चली आ रही है, वह उन्नत क्यों नहीं हो रहा है? इन देशों के समक्ष हमारे इस आर्यावर्त की ऐसी दुर्दशा क्यों है? हमारे देश के अधिकांश लोग और उनका जीवन दयनीय, निकृष्ट, विपन्न, घृणित, तुच्छ, हेय क्यों है? हम चाहते ही नहीं है, चाहे तो हो सकता है।

विश्व का भ्रमण करने के पश्चात मेरी समझ में यही आया है कि हमने उन्नति की सीमा व्यक्ति या परिवार तक बना ली है। हमारे नगर, राज्य, राष्ट्र का नाम विश्व में हो, हमसे लोग प्रेरणा लें, सीखें अनुकरण करें, यहां आवें, हमारा सम्मान करें, ये विचार कभी भी मन में उठते नहीं है तो कार्य क्या होगा। हे देव ! हमारे देशवासियों को दयनीय, दशा से उबर कर, सम्पन्न बनने की प्रेरणा आंप ही प्रदान करो। हम अपनी लुप्त हुई गरिमा को पुनः जीवित करके, विश्व गुरू बनकर, ''कृण्वन्तों विश्वमार्यम'' के आपके वेद उद्घोष को साकार करें, यही प्रार्थना है स्वीकार करें — ज्ञानेश्वरार्य

आर्य पुरोहित सभा मुम्बई का निर्वाचन संपन्न

आर्य पुरोहित सभा, मुम्बई की साधारण सभा आर्य समाज सान्ताक्रुज के प्रथम तल पर संपन्न हुई, जिसमें गत वर्ष की रिपोर्ट (विवरण) को प्रस्तुत किया गया जिसकी सर्व सम्मति से संपुष्टि हुई। आगामी वर्ष के आय-व्यय का ब्यौरा भी अनुमानित तौर पर रखा गया जिसे सभी ने सहर्ष स्वीकार किया। तदनन्तर वर्ष २०१४-२०१५ के लिए निर्वाचन हुआ।

सभा के नव निर्वाचित पदाधिकारी निम्नलिखित हैं। **प्रधान** - पं. नामदेव आर्य, **उपप्रधान**- पं. धर्मधर आर्य तथा पं. अन्शुमान द्विवेदी, **मन्त्री** - श्री नरेन्द्र शास्त्री, **उपमन्त्री** - पं. नरेश शास्त्री एवं पं. विक्रम शर्मा, **कोषाध्यक्ष** -श्री विनोद कुमार शास्त्री, संरक्षक द्वय - श्री प्रकाश चन्द्र शास्त्री, श्री ईश्वरमित्र शास्त्री, **परामर्शदाता**- डा. सामदेव शास्त्री।

पं० नरेन्द्र शास्त्री

आर्य समाज कलकत्ता की गतिविधियाँ

१. श्रावणी उपाकर्म एवं वेद प्रचार सप्ताह :-

प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी आर्य समाज कलकत्ता द्वारा श्रावणी उपाकर्म एवं वेद प्रचार सप्ताह श्रावण पूर्णिमा रविवार १० अगस्त २०१४ से श्रीकृष्ण जन्माष्टमी रविवार १६ अगस्त २०१४ पर्यन्त आर्य समाज कलकत्ता १९ विधान सरणी कोलकाता-६ में उत्साहपूर्वक मनाया गया जिसमें प्रतिदिन प्रातः ७ से ९ बजे तक अथर्ववेद पारायण यज्ञ आचार्य डॉ० वेदपाल जी (मेरठ) के ब्रह्मत्व में सम्पन्न हुआ । जिसमें ऋत्विक वेद पाठी के रूप में वेद पाठ कर रहे थे पं० आत्मानन्द शास्त्री, पं० नचिकेता भट्टाचार्य, पं० देवनारायण तिवारी, श्री वेदप्रकाश शास्त्री, पं० योगेशराज उपाद्याय, पं० कृष्णदेव मिश्र, एवं पं० अर्चना शास्त्री । प्रतिदिन प्रातः यज्ञ के उपरान्त आचार्य डॉ० वेदपाल जी द्वारा आध्यात्मिक उपदेश हुआ तथा प्रतिदिन सायंकाल ७.३० बजे से ८.१५ बजे तक श्री कैलाश जी कर्मठ द्वारा भजन एवं ८.१५ बजे से ९ बजे तक आचार्य डॉ० वेदपाल जी द्वारा विभिन्न विषयों पर वेदकथा प्रस्तुत किया गया ।

योगेश्वर श्रीकृष्ण जन्माष्टमी :- रविवार १७ अगस्त २०१४ को प्रातः अथर्ववेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति के उपरान्त १०.३० बजे से १ बजे तक आर्य समाज कलकत्ता के सभागार में पूर्व प्रधान श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल जी की अध्यक्षता में योगेश्वर श्रीकृष्ण जी की जन्म जयन्ती मनायी गयी। जिसमें वक्ता के रूप में श्री योगेशराज उपाध्याय, श्री राहुल देव शास्त्री, पं० देवनारायण तिवारी प्रधान श्री मनीराम आर्य तथा आचार्य डॉ० वेदपाल जी ने श्रीकृष्ण जी के जीवन तथा उनकी नीतियों पर प्रकाश डाला । श्रीमती विद्यावती सिंह एवं श्री कैलाश कर्मठ जी ने योगेश्वर श्रीकृष्ण जी के जीवन के ऊपर भजन प्रस्तुत किया ।

वेद संगोष्ठी – (विषय:-वेदार्थ पद्धति)

१५ अगस्त २०१४ को अथर्ववेद पारायण यज्ञ के उपरान्त वेद प्रचार सप्ताह के अन्तर्गत प्रातः १० बजे से १ बजे तक एक वेद संगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसका विषय था — **वेदार्थ पद्धति** । इस संगोष्ठी के आयोजन का उद्देश्य उन बुद्धिजीवी क्षेत्रों में महर्षि दयानन्द के वेदार्थ एवं वेदभाष्य शैली से अवगत कराना था जिनका कार्यक्षेत्र विद्यालय एवं विश्वविद्यालय में वेद का अध्ययन एवं अध्यापन है ।

इस अवसर पर मेरठ विश्वविद्यालय के पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष आचार्य डॉ० वेदपाल जी, कोलकाता विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग से डॉ० सत्यजीत लायके, एवं डॉ० हरिदास सरकार, रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय से डॉ० तारकनाथ अधिकारी, मेदिनीपुर विश्वविद्यालय से डॉ० अजय मिश्र तथा पुरुलिया विश्वविद्यालय से श्री प्रतापचन्द्र राय उपस्थित हुए ।

शोक-प्रस्ताव

१) आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध, वयोवृद्ध भजनोपदेशक श्री वेगराज आर्य जी का निधन बृहस्पतिवार ०७-०८-२०१४ को लगभग ९० वर्ष की आयु में हो गया है । आपने आजीवन वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार व प्रसार किया है । आप एक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ थे । ऋषि एवं आर्यसमाज के सिद्धान्तों के अहर्निश प्रचार-प्रसार में आपने अपना जीवन खपा दिया । अन्त समय तक सारे देश में घूम-घूम कर आर्ष सिद्धान्तों और जीवन पद्धति की अलख जगाते रहे । इस अत्यन्त वृद्धावस्था में भी आपके गले की लोच और आवाज की गर्जना और माधुर्य का सारा आर्यजगत् साक्षी रहा है । ऋषि और आर्यसमाज के प्रति आपकी निष्ठा, समर्पण और प्रचार की अहर्निश धुन सभी परवर्ती पीढ़ियों के लिए अनुकरणीय आदर्श रही है । श्री वेगराज जी का निधन आर्य जगत् में एक युग की समाप्ति है । यह आर्यसमाज की अपूरणीय क्षति है ।

२) आर्य समाज बड़ाबाजार (कलकत्ता) के उप-प्रधान श्री रामकुमार जी आर्य का दिनांक ०६-०८-२०१४ को प्रातः अराजक तत्वों द्वारा नृशंस हत्या कर दी गयी है ।

आर्यसमाज कलकत्ता के दिनांक १०-०८-२०१४ के रविवारीय साप्ताहिक सत्संग पर उपस्थित समस्त आर्य जनों ने आदरणीय श्री वेगराज जी आर्य एवं श्री रामकुमार जी आर्य के निधन पर हार्दिक सम्वेदना प्रकट करते हुए ईश्वर से दिवंगत आत्मा की शान्ति एवं सद्गति प्रदान करने तथा शोक सन्तप्त परिवार को इस वियोगजन्य दु:ख को सहन करने की क्षमता प्रदान करने की प्रार्थना की ।

अन्तर्विद्यालय देश-भक्ति प्रतियोगिता

२४.०८.२०१४ को आर्य समाज कलकत्ता, १९, विधान सरणी में युवा शाखा के द्वारा २८वाँ अन्तर्विद्यालय देश भक्ति गीत प्रतियोगिता का आयोजन किया गया था जिसमें कलकत्ता के लगभग २५ विद्यालयों ने भाग लिया । प्रतियोगिता के निर्णायक के रूप में शुभांगी शर्मा, नीलांजन नन्दी, समीर चक्रवर्ती थे एवं विशिष्ठ अतिथि के रूप में अध्यापक श्री गिरधर राय थे । कार्यक्रम का संचालन अशोक सिंह जी ने किया एवं संयोजकत्व पवन सेठ का था । कार्यक्रम की सफलता के लिए युवा कार्यकर्ताओं ने योगदान दिया ।

निर्णायकों के निर्णयानुसार निम्न विद्यालयों के छात्राओं ने क्रमशः प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान अर्जित किया ।

(१) बनन्ती चक्रवर्ती - बालीगंज शिक्षा सदन

(२) झिनूक बसु - सेण्ट्रल मॉडर्न स्कूल

(३) अनिशा राना - आर्मी पब्लिक स्कूल

आर्य समाज कलकत्ता, १९ विधान सरणी कोलकाता - ६ के लिए पं० उमाकान्त उपाध्याय, एम०ए० द्वारा प्रकाशित तथा एशोशियेटेड आर्ट प्रिण्टर्स, ७/२, विडन रो, कोलकाता-६ में मुद्रित । मो. : ९८३०३७०४६३